विवेक-ज्योति

वर्ष ४१ अंक १२ दिसम्बर २००३
मूल्य रु. ६.००

माँ-सारदा सार्ध-शताब्दी विशेषांक

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

दिसम्बर २००३

प्रबन्ध-सम्पादक

स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक

स्वामी विदेहात्मानन्द

वर्ष ४१
अंक १२

वार्षिक ५०/- एक प्रति ६/-

५ वर्षों के लिए — रु. २२५/-

आजीवन (२५ वर्षों के लिए) — रु. १,०००/-

विदेशों में – वार्षिक १५ डॉलर, आजीवन – २०० डॉलर (हवाई डाक से) १०० डॉलर (समुद्री डाक से)

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर – ४९२ ००१ (छ.ग.)

दूरभाष २२२५२६९, ५०३६९५९, २२२४११९

अनुक्रमणिका

माँ-सारदा सार्ध शताब्दी विशेषांक

मुद्रक : संयोग आफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : २५४६६०३)

श्रीरामकृष्ण के दृष्टान्त – १३

रेखांकन – स्वामी आप्तानन्द

साधना चाहिए। 'ईश्वर हैं' – कहकर बैठे रहने से काम न चलेगा। उनके पास जाना होगा। निर्जन में उन्हें पुकारो। 'हे प्रभो! दर्शन दो' – यह कहकर प्रार्थना करो, व्याकुल होकर रोओ। कामिनी-कांचन के लिए जब पागल होकर घूम सकते हो तो उनके लिए भी जरा पागल बनो। लोग कहें कि अमुक व्यक्ति ईश्वर के लिए पागल हो गया। तालाब में बड़ी-बड़ी मछलियाँ हैं। पर केवल उसके किनारे बैठे रहने से ही क्या मिल सकती हैं? चारा डालो। धीरे धीरे पानी हिलेगा, गहरे जल से मछलियाँ आयेंगी और आनन्द आयेगा। सम्भव है, मछली का कुछ अंश दिखायी भी दे और मछली को छलाँग मारते हुए भी देखो। जब उसको प्रत्यक्ष देखा तो और भी आनन्द !!

तालाब का पानी काई और घास-पत्तियों से ढका होने के कारण उसमें खेलती हुई मछली दिखाई नहीं पड़ती। इसी भाँति मनुष्य की दृष्टि माया के आवरण से आच्छन्न होने के कारण वह अपने हृदय में विद्यमान प्रभु को देख नहीं पाता। ... जिसे मछली पकड़ने का शौक है, वह यदि सुने कि अमुक तालाब में खूब बड़ी बड़ी मछलियाँ हैं, तो वह पहले जिन्होंने उस तालाब से मछली पकड़ी है, उनके पास जाकर पूछता है, "क्या उस तालाब में सचमुच ही बड़ी मछलियाँ हैं? और यदि हैं तो कौन-सा चारा लगाने से वे फँसती हैं?" ये जरूरी जानकारियाँ इकट्ठा करके वह उस तालाब के पास जाकर बंसी लगाकर बैठता है। काफी काल तक धैर्यपूर्वक बैठे रहने के बाद अन्त में उसकी बंसी में बड़ी मछली फँस जाती है। वैसे ही धर्ममार्ग में भी साधु-महापुरुषों की बात पर विश्वास रखकर, भक्तिरूपी चारा लगाकर, हृदयरूपी बंसी डाले धैर्य के साथ बैठे रहना पड़ता है, तभी अन्त में भगवान् की प्राप्ति होती है।

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ४१ **दिसम्बर २००३** **अंक १२**

नीति-शतकम्

या साधूश्च खलान् करोति विदुषो मूर्खान् हितान् द्वेषिणः
प्रत्यक्षं कुरुते परोक्षममृतं हालाहलं तत्क्षणात् ।
तामाराधय सत्क्रियां भगवतीं भोक्तुं फलं वांछितं
हे साधो! व्यसनैर्गुणेषु विपुलेष्वास्थां वृथा मा कृथाः ॥९८ ॥

अन्वयः – हे साधो! वांछित फलं भोक्तुं या खलान् साधून्, मूर्खान् विदुषः, द्वेषिणः च हितान् करोति, परोक्षं च प्रत्यक्षम्, हालाहलं तत्क्षणात् अमृतं कुरुते, तां भगवतीं सत्क्रियां आराधय, विपुलेषु गुणेषु व्यसनैः वृथा आस्थां मा कृथाः ।

भावार्थ – हे सज्जन पुरुष ! यदि तुम अपने मनोवांक्षित फल भोगना चाहते हो, तो संकटों से परिपूर्ण अनेक गुणों में विश्वास न रखकर, सत्क्रिया रूपी भगवती की आराधना करो, जो दुष्टों को सन्तों में, मूर्खों को विद्वानों में, शत्रुओं को हितैषियों में, परोक्ष वस्तुओं को प्रत्यक्ष में और विष को अमृत में परिणत कर देती हैं।

गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यजातं
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन ।
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते-
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः ॥९९॥

अन्वयः – गुणवत् अगुणवत् वा कार्यजातं कुर्वता पण्डितेन परिणतिः यत्नतः अवधार्या । अतिरभसकृतानां कर्मणां विपाकः शल्यतुल्यः आविपत्तेः हृदयदाही भवति ।

भावार्थ – बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह भले या बुरे कर्मों को करते समय खूब प्रयत्नपूर्वक उसके परिणाम को समझ ले, (क्योंकि) बड़ी जल्दबाजी में किये गये कर्म का परिणाम आजीवन काँटे के समान हृदय को पीड़ित करता रहता है।

– भर्तृहरि

माँ सारदा का अवतरण

भगवान श्रीरामकृष्ण देव की लीला-सहधर्मिणी श्री सारदा देवी का आविर्भाव २२ दिसम्बर १८५३ ई. को हुआ था। इस वर्ष उनके जन्म के १५० वर्ष पूरे हो रहे हैं और इसी पुण्य उपलक्ष्य में यह **'माँ-सारदा स-अर्ध शताब्दी अंक'** समर्पित है। माँ के जीवन तथा सन्देश विषयक अनेक सामान्य व अलौकिक बातें आगामी पृष्ठों में निबद्ध हैं, अत: यहाँ पर हम केवल उनके आविर्भाव के कुछ कारणों पर ही चर्चा करेंगे।

प्राचीन काल में भारतीय नारी की अवस्था काफी उन्नत थी। गार्गी, मैत्रेयी, शकुन्तला, सावित्री आदि महीयसी देवियों का वृत्तान्त पढ़कर हमें कल्पना हो आती है कि उन दिनों की भारतीय नारी को कितनी स्वाधीनता तथा सम्मान प्राप्त था। पर मध्य-काल में विदेशी आक्रान्ताओं के प्रति आत्म-रक्षात्मक भाव अपना लेने के कारण हमारी माताओं-बहनों का परदा स्वीकार करना पड़ा था। ऐसा लगभग हजार वर्ष तक चला। नारियों की उन्नति के बिना कोई भी समाज उन्नत नहीं हो सकता, इसीलिए आधुनिक भारतीय जागरण के पुरोधा श्रीरामकृष्ण भी अपनी लीलापुष्टि के लिए अपनी शक्ति माँ श्री सारदा देवी को जगत् में लाये थे। माँ ने उनकी सहधर्मिणी ही नहीं, शिष्या की भी भूमिका निभाया। फिर परमहंसदेव के देहत्याग के उपरान्त उनके उत्तराधिकारी के रूप में उन्होंने ही स्वामी विवेकानन्द आदि शिष्यों को मार्गदर्शन भी प्रदान किया।

सनातन हिन्दू धर्म में गृहस्थ तथा संन्यासी – दोनों ही प्रकार के धर्मजीवन की महिमा गायी गई है। श्री शंकराचार्य अपने गीता-भाष्य में कहते हैं – **द्विविधो हि वेदोक्तो धर्मः प्रवृत्तिलक्षणो निवृत्तिलक्षणः च । जगतः स्थितिकारणं प्राणिनां साक्षात् अभ्युदय-निःश्रेयसहेतुः** – "वेदों में जगत् की स्थिति के लिए बताया गया धर्म दो प्रकार का है। पहला तो प्राणियों के अभ्युदय के लिए कर्मकाण्ड या प्रवृत्तिरूप गृहस्थाश्रम धर्म है और दूसरा है मोक्ष का साक्षात् हेतु निवृत्तिरूप संन्यास-धर्म।" समाज की समृद्धि व कल्याण हेतु दोनों ही आदर्शों के समुचित सन्तुलन की जरूरत है। अनेक शताब्दियों से भारत में आदर्श गृहस्थ धर्म का लोप हो रहा था, अत: श्रीरामकृष्ण ने इस आदर्श को अपने जीवन द्वारा निदर्शित किया।

श्रीराम तथा श्रीकृष्ण अवतारों में भी आदर्श गृही जीवन का निदर्शन हुआ है, तथापि सामान्य गृहस्थ के मन में आता है कि धर्म आदि की साधना हम तो संसारी जीवों की नहीं, अपितु साधु-महात्माओं की जीवन-चर्या है। श्रीरामकृष्ण यदि एक संन्यासी के रूप में त्याग, वैराग्य, सत्य-पालन तथा ईश्वर के लिए जीवन बिताने का उपदेश देते, तो गृहस्थ भक्तगण सोचते कि इन्हें कभी 'नून-तेल-लकड़ी' के चक्कर में नहीं फँसना पड़ा, इसीलिए इनके लिए धर्म की बड़ी बड़ी बातें झाड़ना सम्भव है। पर श्रीरामकृष्ण और माँ श्री सारदा देवी ने अपने अलौकिक गृहस्थ जीवन के द्वारा दिखाया कि इस आश्रम के द्वारा भी सर्वोच्च आदर्शों का पालन सम्भव है। गृही भक्तों के मन से यह भ्रम दूर करने के लिए ही श्रीरामकृष्ण ने विवाहित जीवन स्वीकार किया तथा जगत् में एक आदर्श गृहस्थ का 'साँचा' प्रस्तुत किया।

श्रीरामकृष्ण ने न केवल विवाह किया, अपितु जगदम्बा के साक्षात् दर्शन हो जाने के बाद अपनी दिव्योन्माद की अवस्था में अपनी युवा पत्नी को दक्षिणेश्वर में बुलवाकर अपने पास रखा, उनके भीतर जगदम्बा की प्रतिमूर्ति देखकर षोड़शी महाविद्या के रूप में उनका पूजन किया, पत्नी के साथ आठ महीने तक निरन्तर एक ही स्थान पर निवास तथा एक ही शय्या पर शयन तक किया।

दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण ने जिस प्रकार अपनी पत्नी के साथ निवास किया था, उन बातों का स्मरण करते हुए माताजी ने कहा था, "वे ऐसे अपूर्व दिव्य भाव में डूबे रहते थे कि मैं उसका वर्णन नहीं कर सकती! भावाविष्ट होकर वे कितनी ही बातें किया करते। कभी हँसते, कभी रोते और कभी समाधि से निश्चल हो जाया करते थे! इस प्रकार सारी रात बीत जाती थी! वह कैसा विलक्षण आवेश था!"

उन्होंने माताजी को – दीपक में बाती लगाना, घर के लोग कौन कैसे हैं तथा किसके साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए, दूसरों के घर जाने पर कैसा व्यवहार करना चाहिए आदि सांसारिक विषयों से लेकर भजन, कीर्तन, ध्यान, समाधि तथा ब्रह्मज्ञान तक की शिक्षाएँ प्रदान की थीं। आज भला ऐसे कितने लोग हैं, जो आजीवन अपनी पत्नी के साथ इस प्रकार सम्मान, भक्ति तथा नि:स्वार्थ प्रेम का व्यवहार करते हैं!

विवाहित होते हुए भी एक दिन के लिए भी अपनी पत्नी के साथ कोई शारीरिक सम्बन्ध न रखकर भगवान श्रीरामकृष्ण ने अपनी जो अद्भुत तथा अभूतपूर्व प्रेम-लीलाएँ की हैं, वह इस उद्देश्य से किया है कि आज के गृहस्थों को यह शिक्षा प्राप्त हो सके कि इन्द्रियासक्ति के अतिरिक्त विवाह का और भी कोई महान् आदर्श है और उस उन्नत आदर्श को अपना ध्येय बनाकर, विवाहित जीवन में यथासाध्य ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए पति-पत्नी दोनों ही धन्य हो सकते है और साथ ही महान् मेधावी, महान् तेजस्वी, गुणवान् सन्तानों के माता-पिता बनकर भारत के वर्तमान दुर्बल, श्रीरहित तथा सामर्थ्यहीन समाज को भी धन्य बना सकते हैं।

नारियों का आदर्श

स्वामी विवेकानन्द

अन्य महान् आर्यों के समान ही बुद्ध ने भी नारी को सदैव पुरुष की बराबरी का स्थान दिया। उन लोगों के लिए धर्म में लिंगभेद का कोई स्थान न था। वेदों और उपनिषदों में नारियों ने सर्वोच्च सत्यों की शिक्षा दी है और वे पुरुषों के समान ही श्रद्धा की भाजन हुई है।

बुद्ध ने धर्म में पुरुषों के समान ही नारियो का भी अधिकार स्वीकार किया था और उनकी अपनी पत्नी ही उनकी प्रथम व प्रधान शिष्या थीं और वे भारत की सम्पूर्ण नारी-जाति में होनेवाले बौद्ध आन्दोलन की अधिनायिका हुईं।

भारतीय सन्तों के विवरण में महिला सन्तों का भी नाम है। जहाँ ईसाई धर्म में केवल पुरुष सन्त ही हुए हैं, भारतीय धर्मग्रन्थों में नारी-सन्तों का भी एक प्रमुख स्थान है।

क्या आपको याद है कि राजा जनक की सभा में याज्ञवल्क्य से किस तरह के प्रश्न पूछे गये थे? उनकी प्रमुख परीक्षक वाग्मी कन्या वाचक्नवीं – उस काल के शब्दों में ब्रह्मवादिनी थी। उसने कहा था, "मेरे प्रश्न एक कुशल धनुर्धर के हाथ में दो चमकदार तीरों के समान हैं।" उसके नारी होने का उल्लेख तक नहीं किया गया है। तो फिर क्या वनों में स्थित हमारे पुरातन विश्वविद्यालयों में लड़कों और लड़कियों की समानता से अधिक पूर्ण कुछ और हो सकता था? हमारे संस्कृत नाटकों को पढ़िए – शकुन्तला की कथा पढ़िए और देखिए कि क्या टेनीसन की 'प्रिन्सेज' (राजकुमारी) हमें कुछ सिखा सकती है?

नारी के आर्य और सेमेटिक आदर्श सदा ही एक दूसरे के बिल्कुल विपरीत रहे हैं। सेमेटिक लोगों में नारी की उपस्थिति भक्ति में बाधक मानी गयी है और वहाँ वह कोई धार्मिक कृत्य – यथा भोजन के लिए एक पक्षी को मारना तक भी नहीं कर सकती! आर्य लोगों के अनुसार पुरुष अपनी पत्नी के बिना कोई भी धार्मिक कृत्य सम्पन्न नहीं कर सकता।

जैसे पक्षी के लिए केवल एक पंख से उड़ना असम्भव है, वैसे ही स्त्रियों की अवस्था सुधारे बिना जगत् के कल्याण की कोई सम्भावना नहीं है। इसीलिए रामकृष्ण-अवतार में 'स्त्री-गुरु' स्वीकार किया गया है, इसीलिए उन्होंने स्त्री के रूप और भाव में साधना की और इसीलिए उन्होंने नारियों के मातृ-भाव में जगदम्बा के रूप का दर्शन करने का उपदेश दिया।

यदि तुम उसे सिंहनी नहीं होने दोगे, तो वह लोमड़ी हो जायेगी। नारियाँ एक शक्ति हैं, पर इस समय इस शक्ति का केवल दुरुपयोग ही हो रहा है और इसका कारण है पुरुषो द्वारा नारियो पर अत्याचार। आज वह लोमड़ी है, पर उस पर अत्याचार बन्द करो तो वह सिंहनी हो जायेगी।

किसी भी राष्ट्र में वहाँ के महिलाओं के साथ होनेवाला व्यवहार ही उसकी प्रगति का सर्वोत्तम थर्मामीटर है। प्राचीन यूनान में पुरुष और नारी के बीच कोई भेद नहीं किया जाता था, समानता का भाव प्रचलित था। बिना विवाह किये कोई हिन्दू पुरोहित नही हो सकता, इसका अर्थ यह है कि अविवाहित, एकाकी मनुष्य केवल आधा और अपूर्ण होता है।

आदर्श नारीत्व का अर्थ पूर्ण स्वाधीनता है। सतीत्व आधुनिक हिन्दू नारी के जीवन की केन्द्रीय भावना है। पत्नी एक वृत्त का केन्द्र है, जिसका स्थायित्व उसके सतीत्व पर निर्भर है। इसी आदर्श की अति के कारण हिन्दू विधवाएँ जलायी गयीं। हिंदू स्त्रियाँ बहुत ही – कदाचित् संसार की सभी महिलाओं से अधिक धार्मिक और आध्यात्मिक होती हैं। यदि हम उनकी इन सुन्दर विशिष्टताओं की रक्षा करने के साथ-ही-साथ उनका बौद्धिक विकास भी कर सकें, तो भविष्य की हिन्दू नारी विश्व की आदर्श नारी होगी।

मेरे विचार से पूर्ण ब्रह्मचर्य के आदर्श को प्राप्त करने के पूर्व किसी भी जाति को मातृत्व के प्रति परम आदर की धारणा सुदृढ़ करनी चाहिए; और वह विवाह को अछेद्य व पवित्र धर्म-संस्कार मानने से हो सकती है। रोमन कैथोलिक ईसाई और हिन्दू लोग विवाह को एक अछेद्य तथा पवित्र धर्म-संस्कार मानते हैं, इसीलिए दोनों जातियों ने परम शक्तिमान महान् ब्रह्मचारी पुरुषों तथा नारियों को उत्पन्न किया है। अरबों के लिए विवाह एक करारनामा या बल से ग्रहण की हुई सम्पत्ति है, जिससे स्वेच्छापूर्वक छुट्टी पाई जा सकती है, इसीलिए उनमें ब्रह्मचर्य-भाव का विकास नहीं हुआ है। जिन जातियों में अभी तक विवाह-संस्कार का विकास नहीं हुआ था, उनमे आधुनिक बौद्धधर्म का प्रचार होने के कारण उन्होंने संन्यास को एक उपहास बना डाला है। अत: जापान में जब तक (परस्पर प्रेम और आकर्षण को छोड़कर) विवाह के पवित्र और महान् आदर्श का निर्माण न होगा, मेरी समझ में नहीं आता कि तब तक, वहाँ बड़े बड़े संन्यासी तथा संन्यासिनियाँ कैसे हो सकते हैं! जैसा कि आप समझने लगी हैं कि जीवन का गौरव ब्रह्मचर्य है, वैसे ही मेरी भी समझ में आने लगी है कि आम जनता के मन में विवाह के विषय में पवित्र-भाव
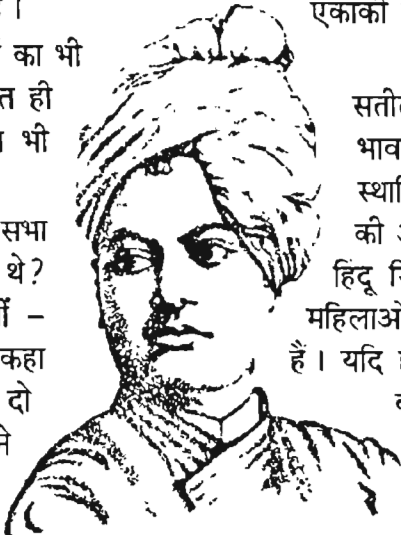
बनाये रखना आवश्यक है, ताकि आजन्म ब्रह्मचर्य की शक्ति से सम्पन्न कुछ व्यक्तियों की उत्पत्ति हो सके।

वर्तमान युग में अनन्त शक्ति-स्वरूपिणी जननी के रूप में ईश्वर की उपासना करना उचित है। इससे पवित्रता का उदय होगा और इस मातृपूजा से इस अमेरिका देश में महाशक्ति का विकास होगा। यहाँ पर (अमेरिका में) कोई मन्दिर (पौरोहित्य शक्ति) हमारा गला नहीं दबाता और अपेक्षाकृत गरीब देशों के समान यहाँ कोई कष्ट भी नहीं भोगता। **स्त्रियों ने सैकड़ों युगों तक दु:ख-कष्ट सहन किये हैं, इसी से उनके भीतर असीम धैर्य और अध्यवसाय का विकास हुआ है।** वे किसी भी भाव को सहज ही छोड़ना नहीं चाहतीं। इसी कारण वे अन्ध-विश्वासी धर्मों एवं सभी देशों के पुरोहितों की मानो आधार हो जाती हैं; यही गुण बाद में उनकी स्वाधीनता का कारण होगा। हमें वेदान्ती होकर वेदान्त के इस महान् भाव को जीवन में उतारना होगा। निम्न श्रेणी के मनुष्यों में भी यह भाव वितरित करना होगा – यह केवल स्वाधीन अमेरिका में ही रूपायित किया जा सकता है। भारत में बुद्ध, शंकर तथा अन्य महा-मनीषियों ने इन सब भावों का लोगों में प्रचार किया था, किन्तु जनता उन भावों को धारण नहीं कर सकी। इस नवीन युग में जनता वेदान्त के आदर्शानुसार जीवन-यापन करेगी और यह स्त्रियों के द्वारा ही कार्य रूप में परिणत होगा।

– "प्राणों से भी प्यारी माँ-काली को अपने हृदय में सहेज रखो। मैं और मेरे हृदय – केवल हम दोनों ही उसे देखें, कोई दूसरा न देखने पाये। बुरे मार्ग की ओर ले जानेवालों को पास भी न फटकने देना, केवल जिह्वा को ही साथ रखो, ताकि वह 'माँ, माँ!' कहकर पुकारती रहे। वे सभी सजीव प्राणियों के परे हैं। वे मेरी जीवन की चाँद, मेरी आत्मा-की-आत्मा हैं।"

'माँ' का वास्तविक स्वरूप तुम लोग अभी नहीं समझ सके हो – तुममें से एक भी नही, पर धीरे धीरे समझोगे। भाई, शक्ति के बिना जगत् का उद्धार नहीं हो सकता। क्या कारण है कि विश्व के सभी देशों में हमारा देश ही सबसे अधम, दुर्बल और पिछड़ा हुआ है? इसका कारण यही है कि वहाँ शक्ति की अवमानना होती है। उस महाशक्ति को भारत में पुन: जाग्रत करने के लिए ही माँ का आविर्भाव हुआ है और उन्हें केन्द्र बनाकर फिर से जगत् में गार्गी और मैत्रेयी जैसी नारियों का जन्म होगा। भाई, अभी तुम क्या देख रहे हो, धीरे धीरे सब समझ सकोगे। इसीलिए मैं माताजी का मठ पहले चाहता हूँ। ... शक्ति की कृपा के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता। अमेरिका और यूरोप में मैं क्या देख रहा हूँ? – शक्ति की उपासना। परन्तु वे उसकी उपासना अज्ञानवश इन्द्रिय-भोग के द्वारा करते हैं। फिर जो पवित्रतापूर्वक सात्त्विक भाव द्वारा उसे पूजेंगे, उनका कितना कल्याण होगा! दिन-पर-दिन सब समझ रहा हूँ। मेरी आँखें खुलती जा रही हैं। इसलिए माँ का मठ पहले बनाना पड़ेगा। पहले माँ और उनकी पुत्रियाँ, फिर पिता और उनके पुत्र – क्या तुम यह समझ सकते हो? ... बाप की अपेक्षा माँ की कृपा मुझ पर लाखगुनी अधिक है। माँ की कृपा, माँ का आशीष मेरे लिए सर्वोपरि है।

जिस जाति ने सीता को उत्पन्न किया है – चाहे उसने उसकी कल्पना ही की हो – पृथ्वी भर में नारी के प्रति उसका आदर अद्वितीय है। पश्चिमी नारी के कन्धों पर कानूनी दृढ़ता से बँधे हुए बहुत-से बोझ हैं, जिनका हमारी नारियों को पता भी नहीं है। निश्चय ही हमारे अपने दोष हैं और अपने अपवाद हैं, पर इसी प्रकार उनके भी हैं। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि संसार भर में सबका प्रयत्न यह रहा है कि प्रेम, दया और ईमानदारी को अभिव्यक्ति दी जाय, और यह भी कि इस अभिव्यक्ति के लिए निकटतम माध्यम राष्ट्रीय रीति-रिवाज हैं। जहाँ तक घरेलू गुणों का सम्बन्ध है, मुझे यह कहने में तनिक भी झिझक नहीं है कि हमारे भारतीय रीति-रिवाज बहुत-सी बातों में सभी से अच्छे हैं।

प्रश्न – "तो स्वामीजी, क्या हमारी नारियों की कोई समस्या भी है?"

– "निश्चय ही हैं, उनकी अनेक समस्याएँ हैं और गम्भीर भी हैं, पर उनमें एक भी ऐसी नहीं है, जो जादू भरे शब्द 'शिक्षा' से हल न की जा सकती हो। पर वास्तविक शिक्षा की तो अभी हम लोगों ने कल्पना तक नहीं की है।"

प्रश्न – "और आप उसकी परिभाषा कैसे करेंगे?"

स्वामीजी ने मुस्कराते हुए कहा – "मैं कभी किसी चीज की परिभाषा नहीं करता, तथापि हम इसे मानसिक शक्तियों का विकास (केवल शब्दों का रटना मात्र नहीं) अथवा व्यक्तियों को ठीक तरह से और दक्षतापूर्वक इच्छा करने का प्रशिक्षण देना कह सकते हैं। इस प्रकार हम भारत को आवश्यकता के लिए महान् निर्भीक नारियाँ तैयार करेंगे – नारियाँ, जो संघमित्रा, लीला, अहल्याबाई, और मीराबाई की परम्पराओं को जारी रख सकें – नारियाँ जो वीरों की माताएँ होने के योग्य हों, क्योंकि वे पवित्र और आत्मत्यागी हैं और जो भगवान् के चरण छूने से जो शक्ति आती है, वे उससे सम्पन्न हैं।"

मैं खूब चाहता हूँ कि हमारी स्त्रियों में तुम्हारी (पाश्चात्य) बौद्धिकता होती, पर यदि वह चारित्रिक पवित्रता की कीमत पर ही आ सकती हो, तो उसे नहीं चाहूँगा। तुम्हारे ज्ञान के लिए मैं तुम्हारी प्रशंसा करूँगा, पर जो बुरा है, उसे तुम गुलाबों से ढँककर अच्छा कहने का जो यत्न करती हो, वह मुझे पसन्द नहीं। बौद्धिकता ही सर्वोच्च गुण नही है। हम नैतिकता और अध्यात्मिकता के लिए प्रयत्न करते हैं। **हमारी स्त्रियाँ इतनी विदुषी नहीं, पर वे अधिक पवित्र हैं।** हर स्त्री के लिए अपने पति को छोड़कर अन्य कोई भी पुरुष पुत्र-जैसा होना चाहिए।

हर पुरुष के लिए अपनी पत्नी को छोड़ अन्य सब नारियाँ माता के समान होनी चाहिए। जब मैं अपने आसपास देखता हूँ और नारी-भक्ति के नाम पर जो कुछ चलता है, उसे देखता हूँ, तो मेरा हृदय ग्लानि से भर उठता है। जब तक तुम्हारी नारियाँ यौन-सम्बन्धी प्रश्न की उपेक्षा करके सामान्य मानवता के स्तर पर नहीं मिलतीं, तब तक उनका सच्चा विकास नहीं होगा। तब तक वे और कुछ नहीं, केवल खिलौना ही बनी रहेंगी। ये ही सब तलाक के कारण हैं। तुम्हारे पुरुष नीचे झुकते हैं और कुर्सी देते हैं, पर दूसरे ही क्षण वे प्रशंसा में कहने लगते हैं – "देवीजी, तुम्हारी आँखें कितनी सुन्दर हैं!" उन्हें यह करने का क्या अधिकार है? एक पुरुष इतना साहस कैसे कर पाता है और तुम स्त्रियाँ इसकी अनुमति कैसे दे देती हो? ऐसी चीजों से मानवता के निकृष्टतर पक्ष का विकास होता है। इनसे हम श्रेष्ठ आदर्शों की ओर नहीं बढ़ते।

हम स्त्री या पुरुष हैं – यह सोचने के स्थान पर हमें सोचना चाहिए कि हम मानव हैं, जो एक-दूसरे की सहायता करने और एक-दूसरे के काम आने के लिए जन्मे हैं। ज्योंही एक तरुण और तरुणी एकान्त पाते हैं, वह उसकी प्रशंसा करने लगता है और इस प्रकार विवाह के रूप में पत्नी ग्रहण करने के पूर्व वह दो सौ स्त्रियों से प्रेम कर चुका होता है.। यदि मैं विवाह करनेवालों में से एक होता, तो मै प्रेम करने के लिए ऐसी स्त्री ढूँढ़ता, जिससे यह सब कुछ न करना होता।

जब मैं भारत में था और बाहर से इन चीजों को देखता था, तो मुझसे कहा जाता था, यह सब ठीक है, यह निरा मन-बहलाव है और मै उसमें विश्वास करता था। परन्तु उसके बाद मैंने काफी कुछ देखा है और मैं जानता हूँ कि यह ठीक नही है। यह गलत है, सिर्फ तुम पश्चिमवाले अपनी आँखें मूँदे हो और उसे अच्छा कहते हो। पश्चिम के देशों की दिक्कत यह है कि वे बच्चे हैं, मूर्ख हैं, चंचलचित्त हैं और समृद्ध हैं। इनमें से एक ही गुण अनर्थ करने के लिए काफी है; लेकिन जब ये तीनों, चारों एकत्र हों, तो सावधान!

धर्म इस पर क्या कहता है। हिन्दू धर्म सान्त्वना लेकर आता है। आप एक बात स्मरण रखें, हमारा धर्म शिक्षा देता है कि विवाह बुरी चीज है और वह दुर्बलो के लिए है। यथार्थ धार्मिक स्त्री या पुरुष तो कभी विवाह ही नहीं करेगा। धार्मिक नारी कहती है, "परमेश्वर ने मुझे बेहतर मौका दिया है, अत: मुझे विवाह करने की क्या जरूरत? मैं तो बस ईश्वर की पूजा-अर्चना करूँगी, किसी पुरुष से प्रेम करने की क्या जरूरत?"

शक्ति-पूजा मात्र कामुकता-मय नहीं होती। यह शक्ति-पूजा कुमारी-सधवा-पूजा है, जैसी हमारे देश में काशी, काली घाट आदि तीर्थों में होती है; यह काल्पनिक नहीं, वास्तविक शक्ति-पूजा है। किन्तु हम लोगों की पूजा इन तीर्थस्थानों में और केवल क्षण भर के लिए ही होती है, पर इन लोगों की पूजा दिन-रात बारहों माह चलती है। यहाँ नारियों का आसन पहले होता है; उनका कपड़ा, गहना, भोजन, उच्च स्थान तथा आदर-सम्मान पहले होता है। यह शक्ति-पूजा परिचित या अपरिचित प्रत्येक नारी की पूजा है। उच्च कुल की और रूपवती युवतियों की तो बात ही क्या है!

पुरुषों के समान ही स्त्रियों के लिए भी शिक्षा-केन्द्र स्थापित करने होंगे। शिक्षित और सच्चरित्र ब्रह्मचारिणियाँ इन केन्द्रों में बालिकाओं को शिक्षा दिया करेंगी। पुराण, इतिहास, गृहकार्य, शिल्प, गृहस्थी के सारे नियम आदि वर्तमान विज्ञान की सहायता से सिखाने होंगे तथा आदर्श चरित्र गठन करने के लिए उपयुक्त आचरण की भी शिक्षा देनी होगी। बालिकाओं को धर्म व नीति-परायण बनाना पड़ेगा; ताकि वे भविष्य में अच्छी गृहिणियाँ हों। इन कन्याओं की सन्तानें इन विषयों में और भी उन्नति कर सकेंगी। जिनकी माताएँ शिक्षित व नीति-परायण हैं, उन्हीं के घर में बड़े लोग जन्म लेते हैं। वर्तमान में तो तुमने नारी को शिशु-उत्पादन का यंत्र-सा बना रखा है। राम! राम!! तुम्हारी शिक्षा का क्या यही फल है? पहले तो वर्तमान दशा से

सारदा-स्तुति

(पटदीप या कीर्तन-एकताल)

(तर्ज – बंगला भजन - एक बार विराजो गो माँ)

माँ सारदा, रहूँगा सदा, तेरी शरण में,
तेरा ही सहारा है मुझे, जनम और मरण में।। तेरी.

(मेरी) मझधार में नैया, ना कोई खिवैया,
(हूँ) बह रहा प्रवाह में, रक्षा करो मैया।
असहाय पा स्वयं को,
इस अपार जलधि तरण में।। तेरी.

मैं थक बहुत चुका, अब और मत छका,
कर लिया प्रयास, मुझसे जो भी हो सका।
अब कर नहीं विलम्ब,
मेरे त्रिविध ताप हरण में।। तेरी.

युग युग का हूँ प्यासा, कर दूर निराशा,
स्नेह-सुधा चाहता हूँ, तेरी जरा-सा,
(अब) कर कृपा 'विदेह' पर,
रख ले अपने चरण में।। तेरी.

– *विदेह*

नारियों का उद्धार करना होगा तथा सर्वसाधारण को जगाना होगा; तभी तो भारत का कल्याण होगा।

पत्नी सहधर्मिणी है। हिन्दू को सैकड़ों धार्मिक अनुष्ठान करने पड़ते हैं और यदि वह पत्नी-विहीन है, तो एक भी नहीं कर सकता। तुम देखते हो कि पुरोहित उनकी गाँठ जोड़ देते हैं और पति-पत्नी साथ साथ मन्दिरों में जाते हैं और प्रमुख तीर्थ-यात्राओं पर भी वे गाँठ जोड़कर ही जाते हैं।

देहत्याग के बाद श्रीराम परलोक में सीता से युक्त हो गये।

सीता – पवित्र, निर्मल, सर्वसहा ! भारत में ऐसी हर वस्तु को सीता नाम दिया जाता है, जो शुभ, निर्मल और पवित्र होती है; नारी में नारीत्व का जो गुण है, वह सीता है।

सीता – धैर्यवान, सर्वसहा, पतिव्रता, नित्य साध्वी पत्नी ! अपने तमाम कष्टों के बीच उन्होंने राम के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कहा। सीता ने कभी प्रतिकार नहीं किया। सीता बनो !

पश्चिमी देशों में नारियों का ही राज, उन्हीं का प्रभाव और उन्हीं की प्रभुता है। यदि तुम्हारे समान वेदान्त की ज्ञाता, तेजस्विनी और विदुषी महिला इस समय धर्म-प्रचार के लिए इंग्लैंड जायँ, तो मुझे विश्वास है कि हर साल कम-से-कम सैकड़ों नर-नारी भारतीय धर्म ग्रहण कर कृतार्थ हो जायँगे। ... यदि आप जैसी कोई वहाँ जायँ, तो इंग्लैंड हिल जाय, अमेरिका का तो कहना ही क्या ! मैं दिव्य दृष्टि से देख रहा हूँ कि यदि भारत की नारियाँ देशी पोशाक पहने भारतीय ऋषियों के मुख से निकले हुए धर्म का प्रचार करें, तो एक ऐसी बड़ी तरंग उठेगी, जो सारे पश्चिमी संसार को डुबा देगी। क्या मैत्रेयी, खना, लीलावती, सावित्री और उभयभारती को इस भूमि में कोई अन्य नारी यह करने का साहस नहीं करेगी?

उन्नति के लिए सर्वप्रथम स्वाधीनता की जरूरत है। यदि तुम लोगों में से कोई यह कहने का साहस करे कि 'मैं अमुक स्त्री अथवा अमुक लड़के की मुक्ति के लिए काम करूँगा' – तो यह गलत होगा, हजार बार गलत होगा। मुझसे बार बार पूछा जाता है कि विधवाओं की समस्या के बारे में और नारियों के कल्याण के विषय में आपके क्या विचार हैं? इस प्रश्न के लिए मेरा एकमात्र उत्तर है – "क्या मैं विधवा हूँ, जो तुम ऐसा निरर्थक प्रश्न मुझसे पूछते हो? क्या मैं स्त्री हूँ, जो तुम बारंबार मुझसे यही प्रश्न करते हो?" नारी-जाति के समस्याओं को हल करनेवाले तुम कौन होते हो? क्या तुम परमेश्वर हो, जो प्रत्येक विधवा और प्रत्येक नारी पर आदेश चलाओ? दूर रहो ! **अपनी समस्याओं का समाधान वे स्वयं कर लेंगी।**

नारियों को हमें ऐसी स्थिति में पहुँचा देना होगा, जहाँ वे अपनी समस्याओं का समाधान अपने ढंग से स्वयं कर सकें। उनके लिए यह कार्य न कोई कर सकता है, न किसी को करना ही चाहिए। और हमारी भारतीय नारी संसार की अन्य कहीं की नारियों की भाँति इसे करने की क्षमता रखती हैं।

शिष्य – पर महाराज, इस देश में गार्गी, खना, लीलावती के समान गुणवती शिक्षित नारियाँ अब पायी कहाँ जाती हैं?

स्वामीजी – क्या तुम समझते हो कि ऐसी नारियाँ इस देश में नहीं हैं? अरे, यह देश वही है जहाँ सीता और सावित्री का जन्म हुआ था। पुण्यक्षेत्र भारत में अभी तक नारियों में जैसा चरित्र, सेवाभाव, स्नेह, दया, तुष्टि और भक्ति पायी जाती है, पृथ्वी में अन्यत्र कहीं भी ऐसा नहीं है। पाश्चात्य देशो मे स्त्रियों को देखने पर कुछ काल तक तो यही नही ठीक हो पाता था कि वे स्त्रियाँ हैं; देखने में ठीक पुरुषों की नकल लगीं। वे ट्रामगाड़ी चलाती हैं, दफ्तर जाती हैं, स्कूल जाती हैं, प्रोफेसरी करती हैं ! एकमात्र भारत की नारियों में ही लज्जा, विनय आदि देखकर नेत्रों को शान्ति मिलती है। ऐसे योग्य आधार के रहते भी तुम उनकी उन्नति न कर सके ! उनमें ज्ञान-ज्योति जलाने का तुमने कोई प्रबन्ध नहीं किया ! उचित रीति से शिक्षा पाने पर ये आदर्श नारियाँ बन सकती हैं।

शिक्षा मिलने पर स्त्रियाँ अपनी समस्याएँ स्वयं ही हल कर लेंगी। अब तक तो इन्होंने केवल असहाय हालत में दूसरों पर आश्रित हो जीवन बिताना और थोड़ी-सी भी अनिष्ट या संकट की आशंका होने पर आँसू बहाना ही सीखा है। पर अब दूसरी बातों के साथ साथ उन्हें बहादुर भी बनना होगा। आज के जमाने में उनके लिए आत्म-रक्षण सीखना भी बहुत जरूरी हो गया है। देखो झाँसी की रानी कैसी महान् थीं !

यहाँ (अमेरिका) की नारियों को देखकर मेरे तो होश उड़ गये हैं। मुझे बच्चे की तरह घर-बाहर, दूकान-बाजार में लिये फिरती हैं। सब काम करती हैं। मैं उसका सोलहवाँ हिस्सा भी नहीं कर सकता ! ये रूप में लक्ष्मी और गुण में सरस्वती हैं – ये साक्षात् जगदम्बा हैं, इनकी पूजा करने से सारी सिद्धियाँ मिल सकती हैं। अरे, राम भजो ! हम भी क्या आदमी हैं? यदि अपने देश में मैं हजार देवी-माताएँ तैयार करके मर सकूँ, तो निश्चिन्त होकर मर सकूँगा। तभी तुम्हारे देश के आदमी आदमी कहलाने लायक हो सकेंगे।

मैं इस देश (अमेरिका) की महिलाओ को देखकर आश्चर्यचकित हो जाता हूँ। माँ जगदम्बा की यह कैसी कृपा है ! ये क्या महिलाएँ हैं? बाप रे ! मर्दो को एक कोने मे ठूँस देना चाहती हैं। मर्द गोते खा रहे है। माँ, तेरी ही कृपा है ! ... स्त्री-पुरुष का भेद मिटाये बिना मैं चैन नही लूँगा। अरे, आत्मा मे भी क्या कहीं लिंग-भेद है? स्त्री और पुरुष का भाव दूर करो, सब आत्मा है। देहाभिमान छोड़कर खड़े हो जाओ। अस्ति अस्ति कहो ! सकारात्मक विचारों को अपनाओ। ❑❑❑

माँ श्री सारदा देवी – जीवन और उपदेश

माँश्री सारदा देवी का जन्म बाँकुड़ा जिला के एक अख्यात ग्राम जयरामवाटी के ग्रामीण परिवेश में बृहस्पतिवार, कृष्णा सप्तमी, २२ दिसम्बर, १८५३ ई. को हुआ। शैशव काल से ही उनके जीवन में करुणा, दया, क्षमा, सत्य आदि सद्‌गुणों का विकास दृष्टिगोचर होने लगा था। मात्र ५ वर्ष की आयु में २३ वर्षीय गदाधर के साथ उनका विवाह हुआ। १९ वर्ष की आयु में वे दक्षिणेश्वर में पति के निकट आईं और उनकी सेवा मे जुट गई। श्रीरामकृष्ण ने उन्हे सांसारिक व आध्यात्मिक सभी विषयों में सुशिक्षित किया। परवर्ती काल में में वे अदृश्य रूप से उन्हीं के हाथों श्रीरामकृष्ण संघ का नियंत्रण व संचालन करते रहे। श्रीरामकृष्ण के विराट् व्यक्तित्व की ओट में स्वयं को प्रच्छन्न रखकर उन्होंने जीवन बिताया। बातों या व्यवहार में उन्होंने कभी अपनी स्वतंत्र सत्ता प्रकट नहीं होने दी। अपने समुज्ज्वल जीवन के आत्मगोपन के ऐसे उदाहरण इतिहास में अति विरल हैं। स्नेह व करुणा की प्रतिमूर्ति श्री सारदा देवी के मन में न तो कोई चंचलता थी और न ही कोई आडम्बर या दिखावा था। जाति या वर्ण के विचार से रहित वे सभी के लिए केवल 'श्रीमाँ' थीं। इस अपूर्व दैवी चरित्र को केन्द्र में रखकर भगवान श्रीरामकृष्ण ने विश्व-नारी के विराट् व महिमोज्ज्वल भविष्य का सूत्रपात किया। भारतीय संस्कृति, आध्यात्मिकता, त्याग, पवित्रता और सेवा से उद्‌भासित माँ का जीवन समुद्र-सा गहरा होकर भी आकाश-सा उदार, हिमालय-सा अचल, तथापि चाँद से अधिक निष्कलंक था। भगिनी निवेदिता का कहना है कि श्रीरामकृष्ण की दृष्टि में श्री सारदा देवी ही भारतीय नारी का आदर्श थीं। २१ जुलाई १९२० ई. मंगलवार को रात डेढ़ बजे उनका लीलावसान हुआ।

उनके उपदेश

(१) जिस प्रकार शरत् (स्वामी सारदानन्द) मेरा पुत्र है, उसी प्रकार यह अमजद (डकैत) भी मेरा पुत्र है।

(२) ठाकुर का विश्व के सभी लोगों के प्रति मातृभाव था। उसी मातृभाव का प्रचार करने के लिए वे मुझे छोड़ गए हैं।

(३) ठाकुर इस बार आए हैं धनी-निर्धन, पण्डित-मूर्ख, सबका उद्धार करने। मलय-पवन जोरों से प्रवाहित हो रहा है। जो अपना पाल थोड़ा-सा भी खोलेगा और ठाकुर के शरणागत होगा, वही धन्य हो जाएगा। इस बार बाँस और घास को छोड़, जिसमें जरा भी सार-तत्त्व है, वही चन्दन हो जाएगा।

(४) ईश्वर की इच्छा के बिना तिनका भी नहीं हिलता। जीव का जब सुसमय आता है, तब वह ईश्वर के स्मरण-मनन मे प्रवृत्त होता है; कुसमय में वह कुप्रवृत्ति और कुसंग में प्रवृत्त होता है। उनकी जैसी इच्छा होती है वैसे ही काल में सब आते हैं। नरेन (स्वामी विवेकानन्द) में क्या क्षमता थी कि वह यह सब कार्य कर सकता? ईश्वर ने उसके माध्यम से कार्य किया, इसलिए वह यह सब करने में सफल हुआ। ठाकुर जो करेंगे वह उनका तय किया हुआ है। फिर भी यदि कोई उनके चरणों में अपने आप को पूरी तरह समर्पित कर दे तो वे उसकी सारी चिन्ताओं को समाप्त कर देंगे। मनुष्य को सब कुछ सहन करना चाहिए, क्योंकि अपने कर्म के अनुसार ही फल मिलता है। और फिर कर्म के द्वारा कर्म का खण्डन होता है। तुम अगर सत्कर्म करोगे, तो उससे तुम्हारा पाप कट जाएगा। ध्यान, जप तथा भगवत्-चिन्तन से पाप कटता है।

(५) कर्म तो करोगे ही, कर्म से मन अच्छा रहता है। पर जप, ध्यान, प्रार्थना की भी विशेष जरूरत है। कम-से-कम सुबह-शाम तो जप-ध्यान करने बैठना ही चाहिए। वह मानो नौका की पतवार के समान है। शाम को प्रार्थना के लिए बैठने से दिन भर भला-बुरा क्या किया, क्या नहीं किया, इसका विचार आता है। पिछले दिन की मानसिक अवस्था के साथ आज की मानसिक अवस्था की तुलना करनी चाहिए। फिर जप करते करते इष्टदेव की मूर्ति का ध्यान करना चाहिए। ध्यान करते समय पहले इष्टदेव का मुख ही दिखाई पड़ता है, किन्तु इष्टदेव के चरणो से लेकर शिखा तक पूरे विग्रह पर ध्यान करने का प्रयास करना चाहिए। काम-काज के साथ साथ यदि सुबह-शाम जप-ध्यान न करोगे, तो यह कैसे समझोगे कि उचित दिशा में जा रहे हो या अनुचित?

(६) कर्म से ही सुख-दुःख होता है। ठाकुर को भी कर्मफल भोगना पड़ा था। ठाकुर के बड़े भाई बीमारी के समय पानी पी रहे थे। थोड़ा-सा पीते ही ठाकुर ने उनके हाथ से गिलास खीच लिया। इससे वे नाराज होकर बोले, "तूने मुझे पानी पीने नही दिया; तू भी इसी तरह कष्ट पाएगा, तेरे गले में भी ऐसे ही तकलीफ होगी।" ठाकुर ने कहा – "भैया, मैंने तो तुम्हारा कोई बुरा नही किया। तुम बीमार हो, पानी पीने से अनिष्ट होगा इसलिए पीने नही दिया। तुमने मुझे इस तरह शाप क्यों दिया?" इस पर बड़े भाई रोते-रोते बोले, "क्या पता भाई, मेरे मुँह से यह बात निकल गई। यह विफल तो होगी नहीं।" बीमारी के समय ठाकुर ने मुझे बताया, "उसके शाप के कारण मेरे गले में यह घाव हुआ है। तुम लोगों को किसी को कुछ नहीं होगा; यह कष्ट मुझे ही हुआ।" मैंने कहा, "जब तुम्हारा यह हाल है तो ऐसे में आम आदमी का क्या होगा?" वे बोले, "वह भला आदमी था; सिद्ध वाक्य था। जिस-तिसके बोल देने से थोड़े ही ऐसा होता है।"

कर्मफल तो भोगना ही होगा, परन्तु ईश्वर का नाम लेने से जहाँ काल सेंध लगाता वहाँ केवल सुई चुभेगी। जप-तप करने से कर्म का काफी-कुछ खण्डन हो जाता है।

(७) ठाकुर की कृपा से सब ठीक हो जाएगा। कोई अगर तुमसे कठोर वचन कह भी दे, तो पलटकर जवाब मत दो। संसार में कितनी ही तरह के लोग रहते हैं। सब सहते हुए रहना चाहिए। ठाकुर कहा करते – "श, ष, स – ये तीनों ही स हैं। जो सहता है, वही रहता है।"

(८) यह क्या? मनुष्य के मन पर आघात देकर क्या कोई बात बोलनी चाहिए? सच्ची बात को भी अप्रिय रूप से नहीं बोलना चाहिए। ऐसा करते रहने से स्वभाव बिगड़ जाता है। ठाकुर कहा करते थे, "किसी लँगड़े से यदि पूछना हो कि वह लँगड़ा कैसे हुआ तो ऐसे बोलना चाहिए – 'तुम्हारा पैर ऐसे मुड़ कैसे गया?' "

(९) जब तुम एक स्थान से दूसरे स्थान जाओ, तो आसपास की बातों को अच्छी तरह से देख-सुन लो और जहाँ तुम रहते हो वहाँ होनेवाली घटनाओं की अच्छी जानकारी रखो। परन्तु अपना मुख बन्द रखो।

(१०) सब कुछ मन से ही है। मन से ही शुद्ध है और मन से ही अशुद्ध। मनुष्य पहले अपने मन को दोषी करके फिर दूसरों के दोष देखता है। दूसरों का दोष देखने से अपना ही नुकसान होगा। बचपन से ही मेरा यह स्वभाव है कि मैं किसी के दोष नहीं देख पाती। मेरे लिए कोई यदि थोड़ा-सा भी करता है तो मैं उसे उतने के लिए ही याद रखने की चेष्टा करती हूँ। मनुष्य का दोष देखना मैंने नहीं सीखा।

(११) देहत्याग के बाद भी क्या मुझे तब तक छुटकारा मिल पाएगा, जब तक मेरी सन्तानें, जिनका मैंने भार लिया है, मुक्त नहीं हो जातीं? मुझे तो उनके साथ निरन्तर रहना पड़ेगा क्योंकि मैंने तो उनके भले-बुरे का भार लिया है। मंत्र देना क्या कोई साधारण बात है! कितना बोझ कन्धों पर उठाना पड़ता है, उनके लिए कितनी चिन्ता करनी पड़ती है!

(१२) (वृन्दावन में) मैंने राधारमण से प्रार्थना की थी, प्रभो! मेरी दोषदृष्टि दूर करो; मैं कभी किसी में दोष न देखूँ।

(१३) मनुष्य को प्यार करने से दु:ख-कष्ट मिलते हैं। जो भगवान से प्यार कर पाता है, वही धन्य हो जाता है। उसे कोई दु:ख-कष्ट नहीं रहता।

(१४) कोई वस्तु कितनी ही छोटी क्यों न हो, उसका अपमान नही करना चाहिए। यदि तुम किसी वस्तु का सम्मान करोगे, तो तुम्हें भी उसके द्वारा सम्मान मिलेगा। छोटे-से-छोटा काम भी श्रद्धा के साथ करना चाहिए।

(१५) अनन्त काल से असंख्य व्यक्तियों ने मूर्ति-पूजा की है और उससे मुक्त हुए हैं। इसका क्या कोई अर्थ नही है? ठाकुर भेदभाव की ऐसी संकीर्ण धारणाओं से बहुत ऊपर थे। सभी में ब्रह्म का निवास है।

(१६) मन में यह दृढ़ विश्वास रखो कि ईश्वर और उसके प्रसाद में कोई भेद नहीं है।

(१७) यह सोचना कि भले ही मेरा कोई और न हो, पर एक 'माँ' जरूर है। ठाकुर कहा करते थे, "जिन लोगों ने मुझे पुकारा है, उनकी मृत्यु के समय मैं उनके पास रहूँगा।" ये उनके अपने शब्द हैं।

(१८) नए भक्तों को ठाकुर-सेवा का भार देना चाहिए, क्योंकि उनमें नवानुराग होता है और सेवा अच्छी होती है! और ये पुराने लोग तो सेवा करते करते ढीले पड़ गए हैं। सेवा करना क्या आसान बात है? ... चन्दन बिलकुल पवित्र हो और फूल तथा बेल-पत्ते कीड़े से खाए न हों। पूजा के समय अपने किसी अंग, बालों या कपड़ों में हाथ न लगे। बहुत यत्न के साथ यह सब करना चाहिए और भोग आदि सब ठीक समय पर लगाना चाहिए। सेवापराध न हो यह ध्यान में रखना चाहिए। परन्तु पता है, मनुष्य को नासमझ जानकर भगवान उन्हें क्षमा कर देते हैं!

(१९) देखो, संसार में दु:ख-कष्ट पाकर तो बहुत लोग राम नाम बोलते हैं किन्तु शैशव से जो पुष्प के समान अपना मन ठाकुर के चरणों में अर्पित कर पाता है, वही धन्य है।

(२०) निष्ठापूर्वक जप-तप तथा कर्म करते रहो, तभी उनकी कृपा प्राप्त होगी। पृथ्वी के सभी प्राणियों पर निरन्तर उनकी कृपा बरस रही है, पर याचना करना जरूरी है। निष्ठा-पूर्वक ध्यान करते रहो तो तुम्हें उनकी अनन्त कृपा का बोध हो जाएगा। ईश्वर श्रद्धा, भक्ति और प्रेम चाहते हैं। केवल बाहरी शाब्दिक उच्चारण उनका स्पर्श तक नही कर सकते।

(२१) मनुष्य-जन्म में कोई आनन्द नही है। संसार दुखो से परिपूर्ण है। आनन्द तो यहाँ एक शब्द मात्र है। जिस पर ठाकुर की कृपा हुई है, वही उन्हे ईश्वर के रूप में जान सकता है। याद रखना, उसी में आनन्द है।

(२२) वह जो पानी देखते हो, इसका स्वभाव ही नीचे की ओर जाना है, सूर्य-किरण उसे भी आकाश की ओर खींच लेती है। वैसे ही मन की गति भी स्वभाव से निम्नगामी – भोग की ओर है। भगवत्कृपा से वही मन ऊर्ध्वगामी हो जाता है।

(२३) जो व्याकुल होकर पुकारेगा, वही ईश्वर का दर्शन पाएगा। अभी उस दिन एक लड़का मर गया। अहा, कितना अच्छा था वह! ठाकुर उसके घर जाया करते थे। एक दिन उसने घर जाकर देखा कि किसी ने उसकी जेब से दो सौ रुपये निकाल लिए। रुपये किसी और के थे। वह व्याकुल होकर गंगा के किनारे जाकर रोने लगा – "हाय ठाकुर, यह क्या हुआ!" उसकी अवस्था भी ऐसी नहीं थी कि अपने रुपयों से

उसकी भरपाई कर दे। रोते रोते उसने देखा कि ठाकुर सामने आकर कह रहे हैं, "रोता क्यों है, गंगा-किनारे ईंट के नीचे दबी नोटों की एक गड्डी है, देख।" वह जल्दी से उठा और ईंट उठाकर देखा कि नोटों का एक गड्डी पड़ी है। शरत् के पास आकर उसने सब कुछ बताया।

(२४) यदि मन शुद्ध हो तो ध्यान क्यों नहीं होगा? क्यों नहीं होंगे दर्शन? जप करने बैठती हूँ तो स्वत: भीतर से नाम उठने लगता है, चेष्टा नहीं करनी पड़ती। ... जप-ध्यान इत्यादि यथासमय आलस्य त्याग कर करना चाहिए। दक्षिणेश्वर में अस्वस्थता के कारण मैं एक दिन जरा देर से उठी। उन दिनों रात तीन बजे उठा करती थी। अगले दिन और देर से उठी। क्रमश: देखा कि सुबह उठने की इच्छा ही नहीं होती। तब ध्यान आया कि अरे, यह तो आलस्य है। इसके बाद जबरन उठने लगी, तो सब कुछ पहले जैसे होने लगा। इन सब विषयों में अभ्यास बनाकर रखना चाहिए।

(२५) साधन-भजन, तीर्थदर्शन या अर्थोपार्जन – सब कम आयु में कर लेना चाहिए। मुझे ही देखो, उन दिनों काशी तथा वृन्दावन में पैदल घूम-घूमकर मैंने कितना दर्शन किया। पर अब दो हाथ जाने को भी पालकी चाहिए। वृद्धावस्था में शरीर में कफ-बलगम भरा रहता है। शरीर में सामर्थ्य नहीं, मन में बल नहीं – ऐसे में क्या कोई काम होता है? ये जो छोकरे हैं, सबने कम उम्र में ही भगवान में मन लगाकर ठीक किया है; यही सही समय है। जो कर सको, अभी कर लो।

(२६) मुझे जो करना था मैंने दीक्षा के समय ही कर दिया। फिर भी यदि तत्काल शान्ति चाहिए, तो साधन-भजन करो, अन्यथा देहान्त के समय मिलेगी। ... मान लो तुम एक खाट पर सोए हो और कोई तुम्हें खाट समेत कहीं अन्यत्र ले जाए, तो नींद टूटते ही क्या तुम समझ जाओगे कि स्थानान्तर हुआ है? जब नींद की खुमारी पूरी तरह चली जाएगी तभी तुम समझ सकोगे कि तुम एक नयी जगह पर आ गए हो।

(२७) जो ठाकुर के शरणागत होता है, ब्रह्मशाप भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। तुम्हें कोई भय नहीं।

(२८) मेरा पुत्र यदि शरीर में धूल-मिट्टी लगाता है, तो धूल झाड़कर मुझे ही तो उसे गोद में लेना होगा।

(२९) मनुष्य का चाहे हजार उपकार करो, पर यदि जरा-सा भी दोष कर दो, तो वह तुरन्त मुँह फेर लेगा। लोग केवल दोष देखते हैं, गुण कौन देखता है? गुण देखना चाहिए।

(३०) दोष तो सब मनुष्यों में ही रहते हैं। पर उन्हें कैसे अच्छा किया जाए, यह कितने लोग जानते हैं?

(३१) मंत्र के द्वारा देहशुद्धि होती है। भगवान का मंत्र जप करके मनुष्य पवित्र होता है। ... कम-से-कम देहशुद्धि के लिए ही मंत्र की आवश्यकता है। ... भगवान के नाम का बीज तो छोटा-सा है, पर उसी से ही समय होने पर भाव, भक्ति, प्रेम, कितना कुछ होता है।

(३२) भगवान को कौन बाँध पाया है? वे स्वयं पकड़ में आए थे, तभी तो यशोदा उन्हें बाँध पाई थी। गोप-गोपियों ने उन्हे पाया था।

(३३) वासना रहते जीव का आवागमन बन्द नहो होता। वासना के कारण ही देह से देहान्तर होता है। जरा-सा बतासा खाने की वासना रहने पर भी पुनर्जन्म होता है।

(३४) भगवान का दर्शन तो उन्हीं की कृपा से हो सकता है। किन्तु साधक को निरन्तर जप-ध्यान करते रहना चाहिए। उससे मन का मैल दूर होता है। साधक को पूजा आदि आध्यात्मिक साधनाएँ करते रहना चाहिए। जैसे फूल हिलाने-डुलाने से उसकी महक निकलती है तथा चन्दन घिसने से सुगंध निकलती है वैसे ही भगवत् तत्त्व की चर्चा करते करते तत्वज्ञान का उदय होता है। और यदि वासनारहित हो पाओ तो ऐसा तत्काल हो सकता है।

(३५) तुमने ठाकुर को देखा है, तुम्हें किस बात का भय है? पर एक बात कहती हूँ। यदि शान्ति चाहो तो किसी के दोष मत देखो। अपने दोष देखो। संसार को अपना बना लेना सीखो। कोई पराया नहीं है। सारी दुनिया तुम्हारी अपनी है।

❑ ❑ ❑

करुणामयी माँ सारदा

स्वामी सत्यरूपानन्द

जीवन के कटु अनुभव हमें ये सिखाते हैं कि हमारे दु:खों के मूल में कहीं-न-कहीं असहनशीलता और अज्ञान है – न जानना है। हम प्राय: कहते हैं कि यदि मुझे पहले ज्ञात होता तो मैं कभी ऐसा न करता।

हमारे दु:ख के इस मूल कारण को दूर करने के लिए ही भगवान श्रीरामकृष्णदेव की लीलासहचरी जगत् जननी श्री माँ सारदा इस धरा-धाम पर आयी थीं। भगवान श्रीरामकृष्णदेव ने स्वयं कहा है, "वह सारदा है, ज्ञान देने के लिए आयी है।" माँ के जीवन पर एक विहंगम दृष्टि डालने पर हम इस सत्य का अनुभव कर सकते हैं।

विश्व के किसी भी समाज का विकास और सर्वांगीण उन्नति तब तक संभव नहीं है, जब तक की उस समाज की महिलाओं के सर्वांगीण विकास की व्यवस्था उस समाज में न हो। नारी की उन्नति केवल भौतक सुविधाओं और समृद्धि के द्वारा सम्भव नहीं है। नारीत्व के इस चरम विकास के सूत्र को अत्यन्त प्राचीन काल में ही हमारे ऋषियों ने समझ लिया था और इसीलिए उचित शिक्षा द्वारा नारी जाति के नैतिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विकास की पूर्ण व्यवस्था की। इसलिए हमारे देश में गार्गी, मैत्रेयी, अरुन्धती, अनुसूइया, सीता, सावित्री, दमयन्ती आदि महान नारी विभूतियाँ उत्पन्न हुईं थीं। किन्तु काल के प्रभाव से नारी-जाति का यह महान आदर्श हमारे ही देश में क्षीण होकर लुप्तप्राय हो गया था। इस प्राचीन महान आदर्श को पुनर्जीवित करने के लिए हमारे युग में माँ सारदा अवतीर्ण हुई थीं। श्रीमाँ ने अपने आदर्श जीवन एवं दिव्य उपदेशों द्वारा एक ऐसा देदिप्यमान जीवन्त आदर्श हमारे सामने प्रस्तुत किया है, जो संसार की सभी नारियों के लिए वरेण्य आदर्श हो सकता है।

श्रीमाँ के महान चरित्र को समझने के लिए हमें हिन्दू जीवन पद्धति में नारी के विकास और पूर्णता के लिए बनाई गई, व्यवस्था पर थोड़ा ध्यान होगा। हिन्दू जीवन-पद्धति में प्रमुख. रूप से नारी व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास के लिए तीन सोपान बताए गए हैं – १. कन्या २. सहधर्मिणी ३. माता।

माँ का जन्म बंगाल के बाँकुड़ा जिले के एक सुदुर ग्राम जयरामबाटी में हुआ था। एक समय की बात जब माँ ५-६ वर्ष की छोटी बालिका ही थी तब उस अंचल में अकाल पड़ा। माँ के पिताजी की आर्थिक अवस्था बहुत सामान्य थी। वे निर्धन ब्राह्मण ही थे, तथापि उनका हृदय अत्यन्त विशाल एवं उदार था। उनके घर के भण्डार में जो कुछ थोड़ा-बहुत अन्न था, उसी से उन्होंने दरिद्र, भूखों के लिए अन्नक्षेत्र खोल दिया। एक बड़े पात्र में खिचड़ी बनाई जाती। जो भी भूखा व्यक्ति आता उसे पत्तल में वह गरम खिचड़ी परोसी जाती। भूख से व्याकुल लोग खिचड़ी के ठण्डे होने की प्रतीक्षा नहीं कर पाते और गरम खिचड़ी ही खाने का प्रयत्न करते। उससे उनका हाथ-मुँह जल जाता। उनकी यह दुर्दशा देखकर हमारी छोटी-सी माँ करुणा विगलित हो अपने नन्हें-नन्हें हाथों में पंखा लेकर पत्तल में परोसी हुई खिचड़ी को ठण्डा करने के लिए पंखा झलती।

हमारी माँ घनीभूत करुणा ही तो थी। करुणा की साक्षात् मूर्ति माँ, तुम सारे जीवन करुणा की वर्षा ही तो करती रही हो! संसार-ज्वाला में विदग्ध अपने सहस्त्रस: सन्तानों के हृदयों को करुणावारि से शान्त ही तो करती रही हो।

भगवान श्रीरामकृष्णदेव की महासमाधि के पश्चात् उनके त्यागी शिष्य जिन्होंने भविष्य में संन्यासी बनकर उनके सन्देश को विश्व में फैलाया, वे ही लोग प्रारम्भिक अवस्था मे द्वार-द्वार पर भिक्षाटन करते घूम रहे थे। उनके लिए सिर छिपाने का कोई स्थान नहीं था। दोपहर में अन्न जुटा तो रात को भूखे पेट सोना पड़ता था।

अपनी इन त्यागी सन्तानों को इस प्रकार भिक्षाटन के लिए घूमते देख माँ का हृदय दु:ख से मानो फटा जा रहा था। अपने आराध्य पति के वियोग का दु:ख तो था ही, माँ के इस दु:ख को कम करने के लिए भक्तगण उनको तीर्थाटन के लिए गया ले गए। वहाँ बोध गया में माँ ने बौद्ध संन्यासियों का एक मठ देखा, जिसमें संन्यासियों के रहने-खाने की सुव्यवस्था थी। जीवन की अन्य सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था थी।

करुणामयी माँ पतिवियोग का दु:ख भूल गई। अपनी त्यागी सन्तानों का दु:ख-दैन्य स्मरण कर उसका हृदय व्याकुल हो उठा और तब गयाधाम में माँ ने भगवान से प्रार्थना की – प्रभु, मैं अपनी सन्तानों का यह कष्ट देख नहीं पा रही हूँ। मेरे बच्चों के लिए तुम सिर छिपाने की एक जगह कर दो। उनके लिए मोटे अन्न और मोटे वस्त्र की व्यवस्था कर दो।

भगवान ने जगत् जननी की प्रार्थना सुनी। और तब स्वामी विवेकानन्द तथा उनके गुरुभाइयों ने भक्तों के सहयोग से रामकृष्ण मठ-मिशन की स्थापना की, जहाँ माँ की कृपा से आज सैकड़ों साधुओं के लिए सिर छिपाने का स्थान है तथा मोटे वस्त्र और सादे अन्न की व्यवस्था है।

करुणामयी! यह तुम्हारी करुणा का ही तो सुफल है।

कलकत्ते में माँ का निवास स्थान है – मायेर बाड़ी – माँ का घर, जो उनके एक संन्यासी सेवक स्वामी विवेकानन्द जी के गुरुभाई स्वामी सारदानन्द जी ने बनवाया था। माँ इस घर में निवास कर रही थीं। एक दिन की बात, सुबह का समय, स्नान आदि कर, माँ पूजा में बैठी हैं। ठाकुर जी की पूजा कर रहो है। अकस्मात् माँ ने किसी महिला के सिसक कर रोने की आवाज सुनी। माँ ने पूछा – कौन हो बेटी? क्यों रो रही हो? भीतर आ जाओ।

करुणामयी का करुणापूर्ण आमन्त्रण सुनकर महिला फफक कर रोने लगी और कहा – नहीं नहीं, माँ, मैं अन्दर नहीं आ सकती। मैं पतिता हूँ, दुश्चरित्रा हूँ।

माँ पूजा का आसन छोड़कर उठ गयीं। और इस रोती हुई युवती को हृदय से लगा लिया। और कहा – बेटी, तेरे पश्चात्ताप के आँसुओं ने तेरे हृदय को शुद्ध कर दिया है। आ मैं तुझे दीक्षा दूँगी।

दुर्भाग्य से यौवन के मद में यह महिला कुछ काल के लिए विपथगामिनी हो गई थीं। किन्तु अपनी भूल समझ लेने पर पश्चात्ताप और अपराध की भावना से उसका हृदय धधक रहा था। करुणामयी माँ ने अपने प्रेम-रस से उसके धधकते हृदय को शीतल कर दिया।

माँ! तुम तो धराधाम में पापी-तापियों के तापहरण के लिए ही तो आई थी।

बेलूड़ मठ में रामकृष्ण संघ के अध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज विराजमान हैं। स्वामी प्रेमानन्द जी आदि अन्यान्य गुरुभाई भी साथ हैं। उन लोगों ने देखा कि तीन व्यक्ति मठ में आए हैं। उन लोगों ने उन साधुओं को प्रणाम किया। ब्रह्मानन्दजी तो उन्हें देखते ही उठकर चले गये। ये तीनों व्यक्ति दीक्षा की प्रार्थना लेकर मठ में आए थे। किन्तु पूज्यपाद स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज किसी भी तरह उनलोगों को दीक्षा देने के लिए राजी ही नहीं हुए। साधुओं ने उन तीनों व्यक्तियों को श्रीमाँ के पास जयरामबाटी जाने की सलाह दी। वे तीनों ही श्रीमाँ के पास जयरामबाटी पहुँच गए तथा उन्होंने श्रीमाँ को बताया की मठ से ब्रह्मानन्दजी महाराज आदि ने उन्हें माँ के पास भेजा है। माँ ने उन पर कृपा की।

पास में उपस्थित सेवकों ने सुना, माँ कह रही थीं – राजा (स्वामी ब्रह्मानन्द) को मेरे पास भेजने के लिए यही जहर मिला।

फिर भी करुणामयी ने इन विषतुल्य अनाधिकारियों को भी दीक्षा देकर उनका जीवन धन्य किया। दीक्षा लेकर ये भक्तगण जब मठ में लौटकर आए तथा श्रीमाँ द्वारा दीक्षा पाने का समाचार दिया, तो प्रेमानन्द महाराज आदि ने कहा – जिस विष से हम सब भस्म हो जाते, माँ ने उस हलाहल को ग्रहण कर लिया। जय माँ! तुम धन्य हो! तुम्हारी महिमा असीम है!

आद्याशक्ति जगत्कर्त्री जगत् का उद्धार करने के लिए तुमने नर-देह धारण किया था। किन्तु माँ, आजीवन तुमने अपने दिव्य दैवी रूप को गोपन ही रखने का प्रयास किया। किन्तु माँ, सूरज को मेघ कब तक ढँके रह सकते है, कितने दिन तक ढँके रख सकते है? कभी-न-कभी मेघ छिन्न-भिन्न हो ही जाता है और तब सूर्य का प्रकाश दशों दिशाओ को आलोकित कर देता है। बीच बीच मे तुम्हारे दिव्य दैवी स्वरूप का आभास भी तो तुमने कृपा पूर्वक दिखा ही दिया है माँ!

अपने पिताश्री के साथ तुम जयरामबाटी से दक्षिणेश्वर जा रही थी अपने आराध्य परमहंस श्रीरामकृष्ण की सेवा में उपस्थित होने के लिए। उस युग मे यान-वाहन और पालकी में तो राजे-महराजे, जमींदार और धन-सम्पन्न लोग ही जाया करते थे। जगद्धात्री और साक्षात् लक्ष्मी होकर भी तुमने इस बार एक गरीब ब्राह्मण के घर कन्या के रूप में अवतीर्ण होना स्वीकार किया था। दिन-दुःखियों और दरिद्रो की पीड़ा को समझने के लिए, उसका साक्षात् अनुभव करने के लिए ही तो माँ! तुमने यह कष्ट स्वीकार किया था।

जयरामबाटी से दक्षिणेश्वर का लम्बा मार्ग पैदल ही पार करना था। लम्बी यात्रा। मार्ग में एक-दो रात्रि बितानी पड़ती थी। सुविधा का आभाव। यात्रा की कठिनाइयाँ और कठोर परिश्रम के परिणामस्वरूप रास्ते में ही माँ तुम ज्वरग्रस्त हो गई। पिताश्री ने रात्रि बिताने के लिए एक छोटी सी झोपड़ी में किसी तरह आश्रय लिया। एक ओर पिताजी चिन्तित और क्लान्त लेटे हुए हैं और दूसरे कोने में तुम लेटी हुई हो। ज्वर से शरीर गरम तवे की तरह तप रहा था। नींद नहीं आ रही है। तभी तो माँ तुमने देखा था कि तुम्हारी ही उम्र की एक श्यामवर्णा युवती तुम्हारे सिरहाने बैठी है। अपने दिव्य और शीतल हाथों से तुम्हारा सिर दबा रही है। तुम्हारे शरीर पर हाथ फेर रही है। देखते-ही-देखते ज्वर की ज्वाला शान्त हो गई। तब तुमने पूछा, तुम कौन हो? कहाँ से आयी हो? और तब उस युवती ने कहा, मैं तुम्हारी बहन हूँ। दक्षिणेश्वर से आई हूँ तथा वही रहती हूँ। माँ तुमने करुण स्वर मे कहा था – अहो, तुम दक्षिणेश्वर से आई हो! मैं भी वहाँ जाना चाहती थी। मेरे आराध्य, मेरे पतिदेव वही रहते है। किन्तु हाय! अब तो मै न जा सकूँगी। ज्वर से पीड़ित जो हूँ।

और तभी दूसरी युवती ने कहा था – तुम स्वस्थ होकर शीघ्र ही दक्षिणेश्वर पहुँचोगी। मैंने उन्हें (श्रीरामकृष्ण को) तुम्हारे लिए ही दक्षिणेश्वर में रखा है।

और तुम स्वस्थ होकर दक्षिणेश्वर पहुँच भी गई।

साक्षात् माँ भवतारिणी तुम्हारी बहन का रूप लेकर मार्ग में

तुम्हारे पास उपस्थित हुई थीं।

माँ, यदि तुम जगत्-जननी न होती तो क्या माँ भवतारिणी तुम्हारी बहन बनकर तुम्हारी सेवा में उपस्थित होती? माँ, तुमने ही कृपा कर यदा-कदा हम सब अज्ञानी और दुर्बल अपनी सन्तानों को अपनी दिव्यता की झलक दिखाई है।

दक्षिणेश्वर का विशाल मन्दिर। मन्दिर से कुछ दूर उत्तर की ओर माँ की पूजा आरती के समय शहनाई आदि वाद्य बजाने के लिए षट्कोण एक छोटा सा घर था जिसे नहबतखाना कहा जाता था। माँ जब दक्षिणेश्वर में रहने के लिए आयीं तब यह नहबतखाना खाली पड़ा था। यह घर इतना छोटा है कि किसी साधारण व्यक्ति के लिए इसमें पैर फैलाकर सोना भी मुश्किल है। दक्षिणेश्वर में हमारी माँ को यही घर रहने को मिला था। उस एक ही कमरे में माँ का बिस्तर, माँ का रसोईघर, माँ का भण्डार, दूसरे शब्दों मे माँ का सारा संसार उस एक ही कमरे में। कमरे की छत से लटकते सींके, जिसमें हण्डियो मे घर-गृहस्थी के उपयोग की विभिन्न चीजें झूला करती थी।

यही छोटा सा घर – घर क्या कहें, कबाड़खाना। यही माँ का साधनपीठ भी। इसी साधनपीठ में बैठकर माँ प्रतिदिन एक लाख जप किया करती थीं। माँ, तुम तो जन्मसिद्धा थी। तुम्हें इतना जप करने की क्या आवश्यकता थी?

माँ करुणामयी! तुम्हारी साधना तो हम सब अयोग्य, दुर्बल सन्तानों के लिए थी, जो प्रारम्भिक उत्साह मे दीक्षा तो ले लेते किन्तु नियमित रूप से बैठकर दस मिनट जप भी नहीं करते थे।

माँ, इन सब अयोग्य सन्तानों पर कृपा करने के लिए उनका दु:ख दूर करने के लिए तुमने यह सब जप-तप साधना किया था। अन्यथा तुम्हें इसकी क्या आवश्यकता थी? इसीलिए तो माँ, तुम करुणामयी हो! करुणा की मूर्ति हो!

संसार के दु:खतापदग्ध जीवों की शान्ति के लिए माँ का अन्तिम उपदेश था – 'बेटा, दूसरों के दोष कभी न देखना। यदि जीवन में शान्ति चाहते हो तो दूसरों के दोष न देखो। अपने ही दोषों को देखो। संसार में कोई पराया नही है। सबको अपना बनाना सीखो।'

माँ का यह अन्तिम उपदेश शान्ति-प्राप्ति का अमोघ मन्त्र है। करुणामयी माँ! कृपा करो जिससे हम तेरे इन उपदेशो का जीवन में आचरण कर सकें। ❑❑❑

सारतत्त्व प्रदायिनी : माँ सारदा

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

देव्यथर्वशीर्षोपनिषद् में एक प्रसंग है। देवताओं ने देवी के पास उपस्थित होकर प्रश्न पूछा – **काऽसि त्वं महादेवीति** – 'हे महादेवि! तुम कौन हो? देवी ने प्रत्युत्तर दिया – **अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृति पुरुषात्मकं जगत्। ... अहं अखिलं जगत्।** – 'मैं ब्रह्मस्वरूपा हूँ। मुझसे ही प्रकृति-पुरुषात्मक यह संसार है। मैं ही सम्पूर्ण जगत् हूँ।' स्वयं देवी के मुख से इस प्रकार देवी-तत्त्व, देवी-स्वरूप जानने के बाद देवताओं ने शरणागत हो श्रद्धापूर्वक करबद्ध प्रार्थना की –

पापहारिणीं देवीं भुक्ति-मुक्ति प्रदायिनीम्।
अनन्ता विजयां शुद्धां शरण्यां शिवदां शिवाम्।। ...
तां दुर्गां दुर्गमां देवीं दुराचार-विघातिनीम्।
नमामि भवभीतोऽहं संसारार्णवतारिणीम्।। ...
नमस्ते अस्तु भगवति मातः अस्मान् पाहि सर्वतः।

– 'हे पापहारिणी, भुक्ति-मुक्ति प्रदायिनी देवि! हे अनन्त विजया, शुभ प्रदान करनेवाली शिवे! हे दुराचार-संहारिणी अम्बे! हे संसार-सागर से तारने वाली माते! हम बहुबिघ्नो से भयभीत हैं। हम तुम्हें प्रणाम करते हैं। हे जगदम्बे! तुम हमारी सब प्रकार से रक्षा करो!'

निर्गुण-निराकार परमात्मा जीवों के कल्याण हेतु जब सगुण-साकार ईश्वर के रूप मे – राम, कृष्ण, चैतन्य, रामकृष्ण आदि रूपों में इस जगत् में आविर्भूत होता है, तब उनके साथ वही दैवी शक्ति, वही परब्रह्म की अभिन्न शक्ति सीता, राधा, विष्णुप्रिया और माँ सारदा के रूप में अवतरित होती है तथा परमात्मा की लीला में अभिन्न संगिनी बनकर उनकी लीला-सहायिका बनकर संसार के प्राणियों का कल्याण करती है। 'दुर्गा-सप्तशती' में माँ कहती हैं –

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदाऽवतीर्याहं करिष्यामि अरि संक्षयम्।।

– "दानवों के प्रादुर्भाव से जब जब संकट उत्पन्न होगा, तब तब मैं अवतीर्ण होकर शत्रुओं का नाश करूँगी।"

माँ सारदा ने इस धरा-धाम पर अवतीर्ण होकर, ईश्वर-प्राप्ति में बिघ्न उत्पन्न करने वाले काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह-मत्सरादि रूपी दैत्यों का नाश करके, उनके विनाश का मार्ग-निर्देश कर, ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग उन्मुक्त किया, आत्मसाक्षात्कार का पथ-प्रशस्त किया। कितने लोगों के पापों का शोषण कर, कर्म-संस्कार, प्रारब्ध-कर्म के बन्धनों को क्षीण कर, चिरपिपासित आत्मा की परमात्मा से ऐक्य स्थापित कराकर परम आनन्द प्रदान किया। नैतिक पथ से विचलित लोगों को नीति और सदाचार के पथ पर चलने की प्रेरणा दी। उन्होंने मानव-जीवन का मुख्य उद्देश्य 'परमात्मा की उपलब्धि, आत्मसाक्षात्कार' इसकी प्राप्ति में आप्राण सहायता की। उन्होंने अपने जीवन से यह संदेश दिया कि घनघोर कर्म, तथा विपरीत परिस्थितियो में भी सदैव परमात्मा का चिन्तन-मनन किया जा सकता है

शब्दकोष के अनुसार 'सार' का अर्थ है – सर्वोत्तम, वास्तविक, शक्तिशाली, उत्कृष्ट, श्रेष्ठ आदि। 'दा' – प्रदान करनेवाली। माँ सारदा जीवन का सार पदार्थ प्रदान करनेवाली, सर्वश्रेष्ठ वस्तु देनेवाली, उत्कृष्ट तत्त्वविधायिनी थी। इसीलिए सदा मंगलकारिणी इस महादेवी को हम लोग श्रद्धा-भक्ति से 'माँ सारदा' कहते है। स्वामी प्रत्ययानन्द जी ने भी लिखा है – "सार देबे बोले एसेछे सारदा, असार ए संसारे – इस असार संसार में सारदा सार तत्त्व देने आयी है।" ये सरस्वती हैं, लेकिन मुक्तिप्रदायिनी, जन्म-मरण-बन्धन-उच्छेद करनेवाली पराविद्या प्रदान करती हैं। ये दुर्गा हैं, लेकिन मनुष्यों के अन्तस्थ दैत्यों का नाश कर परमात्मा का दर्शन कराती है। ये अपनी सन्तानों के हृदय को विशुद्ध कर उसमें ब्रह्मस्वरूप को प्रकाशित करती हैं।

माँ सारदा के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए श्रीरामकृष्ण देव ने स्वयं कहा हैं – "वह (श्री माँ) सारदा है, सरस्वती है। ज्ञान देने के लिए आई है। सौन्दर्य रहँने पर उसे अशुद्ध भाव से देखने के कारण कहीं लोगो का अमंगल न हो जाय, इसी से इस बार रूप छिपाकर आई है।" "वह ज्ञानदायिनी है, महा-बुद्धिमती है। वह क्या ऐसी वैसी है? वह मेरी शक्ति है।"

श्रीमाँ सारदा के प्रति स्वामी विवेकानन्द ने अपनी श्रद्धा-पुष्पांजलि इस प्रकार अर्पित की थी – "भाई, जीवन्त दुर्गा की पूजा दिखा दूँगा; तब मेरा नाम! माँ की याद आने पर कह डालता हूँ – 'को रामः?' भाई, ... यहीं पर मैं अन्धविश्वासी हूँ। श्रीरामकृष्ण ईश्वर थे या मनुष्य, जो चाहो कहो, पर भाई, जिसकी माँ मे भक्ति नहीं, उसे धिक्कार देना।"

श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग-शिष्य स्वामी प्रेमानन्द जी ने श्रीमाँ के सम्बन्ध मे एक पत्र में लिखा था – "श्री माँ को किसने समझा है? उनमें ऐश्वर्य का आभास तक नहीं है। श्रीरामकृष्ण में तो ज्ञान का ऐश्वर्य था; किन्तु श्रीमाँ मे तो ज्ञान का ऐश्वर्य भी लुप्त है। यह कैसी महाशक्ति है! जय माँ! जय माँ! जय शक्तिमयी माँ! जिस विष को हम पचा नही सकते, वह सब श्रीमाँ के हवाले कर देते है। वे सभी को गोद में ले लेती हैं। अनन्त शक्ति, अपार करुणा! जय माँ! हम लोगों की बात क्या कह रहा है, स्वयं श्रीरामकृष्ण को भी ऐसा करते नहीं देखा। वे भी कितना ठोंक बजाकर लोगों को लेते थे। पर यहाँ, श्रीमाँ के पास, तू क्या देखता है? अद्भुत! अद्भुत! सभी को आश्रय देती हैं, सबका खाद्य खा लेती है और पचा

लेती हैं। माँ! माँ! जय माँ!''

उपरोक्त महापुरुषगण जो माँ के प्रत्यक्ष द्रष्टा एवं कृपापात्र थे, श्रीमाँ के प्रति उनकी भी वाणी अवरुद्ध हो जाती है। वे उनकी महिमा को व्यक्त करने में असमर्थ हो जाते हैं। लेकिन समय समय पर श्रीमाँ ने अपने को छिपाते हुए भी निज स्वरूप को प्रकाशित किया है और अपनी सन्तानों को अपने दिव्य जीवन की झलक मात्र बोधगम्य करने की शक्ति प्रदान की है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण द्वारा वर्णित – अभय, अहिंसा, अक्रोध, सत्य, शान्ति, त्याग, करुणा, धैर्य, तेज, क्षमा, धृति, पवित्रता और मान-अपमान-अतीत, इन सभी दैवी गुणों से माँ सारदा सम्पन्न थीं एवं स्व-शरणागत पुत्रों में इन सद्गुणों का संचार करने वाली थीं।

कौन ऐसा व्यक्ति है, जो श्रीमाँ से अल्प समय के लिए भी मिला हो और उनके करुणार्णव में, उनके स्नेह-सिन्धु में उनके प्रेम-पारावार में अवगाहन न किया हो? वात्सल्यमयी श्रीमाँ का प्रेम दीन-दुखी, धनी-निर्धन, सज्जन-दुर्जन, सन्यासी-गृहस्थ सबके लिए समान था। यदि उन्होंने अहर्निश स्व-सेवक स्वामी सारदानन्द जी को पुत्रवत् प्यार किया, तो अमजद जैसे डकैत को भी सुत-सदृश स्नेह दिया। यदि उन्होंने विश्ववन्द्य स्वामी विवेकानन्द जी को पुत्र की तरह सर्वत्र अपनी आँचल में परित्राण करती रहीं, तो वही सुरापायी गिरीश एवं अन्यान्य भक्तों को भी सदैव मातृवत् प्यार कर उनका कल्याण करती रहीं। उनका मंगल विधान करती रहीं। वे पशु-पक्षी, जानवरों तक को मातृवत् स्नेह करती थीं। कितनों ने श्रीमाँ का दर्शन कर अपने अशान्तमय जीवन में शान्ति प्राप्त की। श्रीमाँ ने अपने कृपा-कटाक्ष से अपने प्रपन्न सन्तानों को प्रेमवारि, कृपावारि से सिंचित कर उनके जीवन को प्रशान्ति एवं आनन्द से परिपूर्ण किया एवं उनमें ज्ञान-भक्ति का उद्रेक कर, ईश्वरपरायाणा बुद्धि जाग्रत कर, उन्हें भगवन्मुखी बनाया।

श्री माँ के सत्यस्वरूप से अभिज्ञ श्रीरामकृष्ण ने स्वयं त्रिपुरसुन्दरी के रूप मे षोडषोपचार से उनकी पूजा करते हुए प्रार्थना की थी – ''हे सर्वशक्तिमात: त्रिपुरसुन्दरी! सिद्धि का द्वार खोलो। इनका शरीर मन पवित्र कर इनमें आविर्भूत हो सर्वकल्याण करो।''

प्राय: लोगों की शिकायत रहती है कि उन्हें कर्माधिक्य के कारण ईश्वर का स्मरण-मनन करने का अवसर नहीं मिलता। श्रीमाँ सारदा ने अपने जीवन द्वारा इस प्रश्न का सहज समाधान प्रस्तुत किया है। श्रीमाँ दक्षिणेश्वर मे स्वयं प्रात:काल बहुत सबेरे उठकर पवित्र हो जप करती थी। तत्पश्चात् प्राय: दिनभर, शाम को देर रात तक विविध प्रकार की सेवाओं मे व्यस्त रहती थीं। जैसे – श्रीरामकृष्णदेव के लिए सुपाच्य कई प्रकार के भोज्य पदार्थ बनाना, भक्तो के लिए भोजन पकाना, उनके लिए पान सजाना, आगन्तुक महिला भक्तों से वार्तालाप कर उनके दुखित हृदय को शान्ति प्रदान करना आदि। अन्यान्य विविध प्रकार के कार्यों को करते हुए भी वे एक लाख जप करती थीं। सर्वकर्म-सम्पादन करते हुए भी वे ईश्वरपरायणा थीं। उन्होंने क्षणभर के लिए भी स्वयं को परमात्मा से पृथक नहीं किया। वे रामकृष्णमय थी। श्रीरामकृष्ण के भौतिक शरीर के चले जाने पर भी वे घोर कष्टों के बीच भी सर्वदा रामकृष्ण-गतप्राणा बनी रही।

इस प्रकार श्रीमाँ ने अपने जीवन से निविड़ कर्म के मध्य भी अखण्ड ईश्वर की स्मृति द्वारा सारे संसार को यह प्रेरणा दी कि गहन कर्म-निष्पादन कर भी अविच्छिन्न ईश्वर से सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। उन्होंने संसार के समस्त प्राणियों के लिये मोक्ष-मार्ग, मुक्ति-पथ को उद्घाटित कर जीवन के सार तत्त्व को प्रदान कर स्व 'सारदा' नाम को सार्थक किया।

माँ सारदा लोक संस्कृति की संरक्षिका एवं संवाहिका थीं। वे भारतीय संस्कृति की उन्नायिका और भारतीय सभ्यता को परिपूर्णता प्रदान करने वाली थीं। वे मानवीय संस्कृति की संपोषिका एवं मानवीय संवेदना की स्वसंवेदिनी थीं। वे एक आदर्श पुत्री, पत्नी, गृहिणी तथा वात्सल्यमयी माँ थी। वे त्याग-तपस्या की मूर्ति एवं सहिष्णुता का जीवन्त विग्रह थी। वे साधना और साध्य, लक्ष्य एवं लक्ष्यवेधक शस्त्र भी स्वयं थीं। वे प्रकृतमयी एवं प्रकृति से अतीत प्रकृति-स्वामिनी ब्रह्मस्वरूपिणी थीं। ऐसी माँ के चरणों में मैं कोटिश: नमन् करता हूँ तथा उनकी चरण-रेणु से पूत हो उनके पद-पंकजांक में आश्रय की याचना करता हूँ।

मै सच्चिदानन्दमयी, स्नेहसुधापूर्णा श्रीमाँ सारदा के पादपद्मों में श्रद्धा के साथ आकुल हृदय से यहां एकान्तिक प्रार्थना करता हूँ –

''हे जगदम्बे! यद्यपि हम अज्ञानी है, तेरी गुण-दोषमय सृष्टि के अन्तर्गत है, देशकालावच्छिन्न है, तेरी सत्व-तम-रजमय जगत् में अवस्थित हैं, तथापि तेरी सन्तान हैं, तुम अपनी अकारण अनन्त कृपा-कटाक्ष से हम सबका सर्वविध कल्याण करो।

''हे करुणामयी, शरणागत पुत्रों को वात्सल्य प्रदायिनी माँ सारदे! इस संसार के सर्वयोनियों में अवस्थित अपनी समस्त सन्ततियो को निज निष्कारण असीम अनुकम्पा से, दया-दृष्टि से उनके जड़त्व का नाश कर, सबमे विवेक, विज्ञान, ज्ञान-भक्ति एवं त्याग का संचार करो। सबके चित्त को पूर्णत: विमल कर, उनके हृदयस्थ कमलासन पर आसीन होओ एव सबको मुक्ति, शान्ति, प्रेम एवं परम आनन्द प्रदान करो।'' ☐

उनकी अहैतुकी कृपा

स्वामी अपूर्वानन्द

माँ श्री सारदा देवी दैवी मातृत्व की जीवन्त विग्रह थीं। उनके अनेक शिष्यो तथा भक्तों ने उनकी मधुर-पावन स्मृतियाँ लिपिबद्ध कर रखी है। हमारे लिए बँगला ग्रन्थ 'श्रीश्री मायेर पदप्रान्ते' से इस लेख का अनुवाद किया है इलाहाबाद की श्रीमती मधूलिका श्रीवास्तव ने। – सं.)

१९१८ ई. मेरे जीवन का स्मरणीय वर्ष है। इसी वर्ष मैंने पहली बार माँ का सान्निध्य प्राप्त किया। वर्तमान युग के श्रेष्ठ पूण्य पोठ बेलूड़ मठ का दर्शन किया और इसी वर्ष मैंने श्रीरामकृष्ण के पाँच प्रमुख शिष्यों – स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी शिवानन्द, स्वामी सारदानन्द, स्वामी तुरीयानन्द और स्वामी सुबोधानन्द के दर्शन पाये।

कोजागारी लक्ष्मी पूजा के कुछ दिन पूर्व मैं बेलूड़ मठ गया और आठ-दस दिन रहा। मेरे बेलूड़ जाने का भी एक इतिहास है। एक बार मैंने स्वप्न मे बेलूड़ मठ और महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्द) को देखा। स्वप्न की बात पत्र द्वारा सूचित करते हुए मैंने महापुरुष महाराज से बेलूड़-दर्शन की अनुमति माँगी। उनसे अनुमति-पत्र पाकर मैं बेलूड़ मठ को चल पड़ा। मठ पहुँचकर मैंने देखा – यही है मेरा स्वप्नदृष्ट बेलूड़ मठ !

सीढ़ी चढ़कर दूसरी मंजिल पर जाकर (पुराने) मन्दिर में प्रणाम करते ही समग्र मन-प्राण आनन्द से भर उठे। थोड़ी देर बाद सीढ़ियाँ उतरकर किसी संन्यासी से महापुरुष महाराज के दर्शन की प्रार्थना करने पर मुझे उनके कमरे में ले जाया गया। मठ-भवन की सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर जाते ही एक दिव्य-कान्ति शान्त वरिष्ठ संन्यासी का दर्शन हुआ। लगा कि ये ही हमारे स्वप्रदृष्ट महापुरुष महाराज हैं। उन्होंने स्नेहपूर्वक मुझे देखा – उनके नेत्रों से मानो कृपा और करुणा बरस रही थी। मैं अभीभूत होकर उनके चरणों में प्रणत हो गया। दीक्षा हेतु प्रार्थना करने पर उन्होंने कहा – "मैं तो किसी को दीक्षा नहीं देता। ठाकुर ही हमारे गुरु हैं, तुम पतित-पावन 'रामकृष्ण' नाम का जप करो, इसी से तुम्हारा कल्याण होगा। बाद में यदि दीक्षा की जरूरत हुई, तो वे उसकी भी व्यवस्था करेंगे।"

दो-तीन दिन मठ में निवास करने के बाद मैं प्रतिदिन की भाँति एक दिन सुबह महापुरुष महाराज को प्रणाम करने गया, तो वे स्वयं ही माँ की चर्चा करते हुए बोले, "तुमने तो माँ को नही देखा। तुम्हारा परम सौभाग्य है कि वे इस समय बागबाजार के उद्बोधन-भवन में हैं – जाकर उनका दर्शन कर आओ। बलराम-मन्दिर में महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) तथा हरि महाराज हैं, उनके भी दर्शन करना।" अगली सुबह ही उन्होने जाने का निर्देश दिया। उन्होंने और भी कहा, "उद्बोधन मे शरत् महाराज को और बलराम-मन्दिर मे महाराज और हरि महाराज का दर्शन करके कहना कि मैंने तुम्हे मठ से भेजा है।"

अगले दिन सुबह नाव से मैं बागबाजार जा पहुँचा। नाव से उतरकर पूछते हुए जब उद्बोधन में माँ के घर पहुँचा, तो देखा उस घर के सामने एक घोड़ागाड़ी खड़ी है। मेरे पहुँचते ही वह घोडागाड़ी चली गयी। माँ के घर में प्रवेश करते ही एक संन्यासी ने कहा, "माँ अभी अभी घोड़ेगाड़ी से चली गई। वे बलराम-मन्दिर गई है। इस समय उनका दर्शन नही होगा। शाम को महिला-भक्तो के दर्शन का समय होता है। अतः कल सुबह के पूर्व माँ का दर्शन असम्भव है।"

माँ का दर्शन नही होगा – यह सुनकर मन खिन्न हो गया। तभी एक स्थूलकाय वरिष्ठ संन्यासी गंगा-स्नान करके लौटे। वे गीला गमछा लपेटे, कन्धे पर धुले भीगे कपड़े और हाथ में गंगाजल से भरा घड़ा लिए हुए थे। मैं प्रणाम करने चला तो वे गम्भीर स्वर में बोले, "ठहरो, पहले पैर धो लूँ।" बताया गया, "ये ही स्वामी सारदानन्द हैं।" पैर धोकर बरामदे में खड़े होते ही मैंने उन्हें प्रणाम करके माँ के दर्शन की प्रार्थना की और बताया कि पूजनीय महापुरुष महाराज ने मुझे भेजा है। सारदानन्द जी ने भी बताया कि आज दिन माँ का दर्शन सम्भव नहीं है। अगले दिन सुबह उनका दर्शन हो सकता है।

तब वहाँ और भी दो-एक साधुओं को प्रणाम करके मैं राजा महाराज तथा हरि महाराज के दर्शन करने बलराम-मन्दिर चला। वहाँ पहुँचकर मैंने महाराज का दर्शन किया। ठाकुर के दर्शन का सौभाग्य तो मुझे मिला नही, पर उनके मानसपुत्र के स्थूल शरीर का दर्शन और प्रणाम कर मैंने स्वयं को अत्यन्त सौभाग्यवान महसूस किया। लेकिन हरि महाराज का दर्शन नहीं मिला। उनके सेवक ने कहा कि अभी नहीं, संध्या के बाद उनका दर्शन होगा। संध्या के बाद मैं पुनः बलराम-मन्दिर गया। सेवक महाराज से भेंट हुई।

वे मुझे हरि महाराज के कमरे में ले गए। दण्डवत् प्रणाम करने के बाद मैंने उनके चरण-स्पर्श किये। उन्होंने मुझे पास के छोटे बेंच पर बैठने को कहा और स्नेहपूर्वक बहुत-सी बातें करने लगे। मुझे माँ का दर्शन नहीं मिला था, अतः मन बड़ा खिन्न था। ममतापूर्ण स्वर मे वे बोले, "माँ का दर्शन पाना क्या सहज बात है? तुम्हारे हृदय की व्याकुलता बढ़ाने के लिए ही उन्होंने आज दर्शन नहीं दिये है। बाद में उनके दर्शन कर सकोगे। इसके लिए खेद मत करो। मन मे उनका अभाव -बोध बढ़ने पर, वे यथासमय दर्शन देंगी। खूब रो रोकर

उनसे प्रार्थना करो। प्रसन्न होकर वे निश्चय ही दर्शन देंगी।'' माँ का दर्शन पाने के लिए इतनी सब तैयारी चाहिए – मुझे तो इसकी कल्पना ही न थी। उनकी बातों से मन शान्त हुआ। उन्हें प्रणाम कर मैं अपने निवास-स्थान पर लौट आया।

अगली सुबह मैं पुन: माँ के दर्शन के लिए गया, परन्तु पुन: निराशा हाथ लगी। महाराज लोगों ने बताया कि उस दिन सुबह विशेष कारण से पुरुष-भक्तों का दर्शन नहीं होगा। फिर अगले दिन सुबह आने को कहा गया। मन बड़ा दुखी हुआ। बलराम-मन्दिर में पूजनीय महाराज और हरि महाराज के दर्शन को गया, लेकिन वह भी नहीं हुआ। एक दिन सैकड़ों युगों के समान प्रतीत होने लगा। मुझसे जितना सम्भव हुआ मैंने ध्यान तथा प्रार्थना की, परन्तु मन में एक विराट् शून्यता भर गयी। शूलविद्ध प्राणी के समान छटपटाते हुए मैंने वह दिन बिताया। संध्या को मैं फिर हरि महाराज के पास गया। उन्होंने मुझे तरह तरह से सांत्वना प्रदान की। बहुत देर तक उनके पास बैठकर उनके स्नेह से सराबोर होकर मैं अनिच्छापूर्वक लौटा। रात में प्राणों की छटपटाहट से नींद नहीं आयी।

मैं एक भक्त के घर ठहरा था। अगली सुबह गंगा-स्नान के उपरान्त मैं उन भक्त के घर में ध्यान करने बैठा। ऐसा सोचकर बैठा था कि थोड़ी ही देर ध्यान करूँगा, पर एक अलौकिक घटना हो गयी। आनन्द और विस्मय से बाह्यज्ञान-शून्य होकर मैं बड़ी देर तक आसन पर बैठा रहा। आसन से जब उठा, तो साढ़े छह बज चुके थे – मैं भी ध्यान की बात सोचते सोचते आशा परिपूर्ण होकर माँ के घर की ओर चला।

उद्बोधन-भवन पहुँचकर देखा कि पन्द्रह-बीस भक्त माँ के दर्शन की बाट जोह रहे हैं। सुना कि माँ का दर्शन होगा। मैं आनन्द-विह्वल हो उठा। साढ़े सात बजे के बाद एक महाराज एक बड़े बर्तन में शाल पत्तों में सजा हुआ प्रसाद लाकर सबके हाथों में देते हुए बोले, ''माँ ने भेजा है, प्रसाद खाकर प्रतीक्षा कीजिए। दर्शन के लिए बुलाये जाने पर आप सभी माँ का दर्शन करने जाएँगे।'' उन्होंने यह भी बताया कि माँ ने स्वयं अपने ही हाथों से प्रसाद सजाकर हमारे लिए भेजा है। उसे खाते समय परम आनन्द हुआ। माँ ने कृपापूर्वक अपने हाथों से प्रसाद भेजा है। इससे बड़ी उपलब्धि और क्या हो सकती है? प्रसाद माँ के स्पर्श, स्नेह तथा ममता से परिपूर्ण था।

भक्तगण आपस में चर्चा कर रहे थे, ''सामने की सीढ़ी से ऊपर जाना होगा और माँ का दर्शन कर दूसरी ओर से उतरना होगा। माँ पुरुष-भक्तों से बात नहीं करतीं'' – आदि आदि। मैं यह सब नहीं जानता था। माँ पुरुष-भक्तों से बात नहीं करतीं, यह सुनकर मन क्षुब्ध हुआ। मैं तो माँ कहकर पुकारूँगा, क्या वे मेरी पुकार का उत्तर नही देंगी? कुछ भी नहीं कहेंगी ! मन इस चिन्ता में तार तार हो रहा था। तभी देखा भक्तों की पुकार हो रही थी। ऊपर जाने के लिए सभी लोग पंक्तिबद्ध होकर सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे। सभी लाइन से खड़े हो गए। मुझे लगा, मैं सबके पीछे रहूँगा, सबसे अन्त में प्रणाम करूँगा। मेरी बालक जैसी बुद्धि थी, फिर भय हुआ, माँ यदि तब तक चली गयीं और मैं प्रणाम न कर सका तो?

पर उस समय और आगे जाकर और कुछ करने का उपाय नहीं था। उसी पंक्ति में सबसे आखिर में चुपचाप प्रार्थना करते हुए खड़े खड़े मैं माँ के बारे में सोचने लगा। सुबह के ध्यान का चित्र अन्त:करण में उद्भासित हो उठा।

भक्तगण सीढ़ी से माँ को प्रणाम करने के लिए आगे बढ़ रहे थे, मैं भी उनका अनुसरण करके चल रहा था। क्रम से सीढ़ी से ऊपर पहुँचकर देखने में आया कि एक कमरे के द्वार के समक्ष एक एक व्यक्ति भूमि पर सिर टेककर प्रणाम कर रहे हैं और दूसरी तरफ से उतरते जा रहे हैं। मै आगे बढ़ रहा था, मेरे पीछे कोई नहीं था। द्वार के समक्ष प्रणाम की जगह पर जाकर देखा माँ आपादमस्तक एक श्वेत रेशमी चादर से सारी देह ढँककर बैठी हैं। माँ के श्रीचरण भी दिखाई नहीं दे रहे थे। पूरा शरीर ढँका था। मन बैठ गया। प्रतीक्षा का समय नहीं था। मैंने भी माँ के सामने घुटने टेककर भूमि पर सिर रखकर प्रणाम किया। लगभग तीस या चालीस सेकेंड या एक मिनट तक सिर झुकाए रहा, नेत्रों में आँसू भर आए थे। सिर उठाते ही देखा, माँ ने चादर हटा दिया है, मुख पर अब घूँघट नहीं था। वे स्नेहपूर्वक मेरी ओर देख रही थीं। मै आनन्द से विह्वल हो उठा। उनके चरण-स्पर्श के लिए हाथ बढ़ाते ही माँ ने स्मित हास्य के साथ मेरे चेहरे पर हाथ फेरते हुए मेरी आँखो के आँसू पोंछ दिए और मेरी ठुड्डी का स्पर्श कर अपना हाथ चूमते हुए मधुर स्वर में पूछा, ''बेटा, प्रसाद मिला है?''

उनके चेहरे की ओर देखते हुए मैं केवल ये दो शब्द ही कह सका, ''हाँ माँ, खाया है।'' माँ के स्नेहपूर्ण मधुर वचन से हृदय परिपूर्ण हो गया था – मैं अवाक् होकर केवल माँ को देख रहा था – ब्रह्ममुहूर्त में ध्यान के समय मुझे इन्हीं का तो दर्शन मिला था। इन्हीं लाल किनारी की साड़ी पहने माँ ने मुझे गोद में उठाकर सीने से लगाकर मुझे चूमकर तथा स्पर्श करके मुझे कितना दुलार किया था। सब कुछ मानो स्वप्रवत् लग रहा था। मन में आया माँ से सब कुछ पूछूँ, लेकिन ऐसा नहीं कर पाया। माँ को एक बार फिर प्रणाम कर मैंने विदा ली। थोड़ा आगे जाकर मुड़कर देखा – माँ तब भी मेरी ओर स्नेह भरे नेत्रों से देखती हुई बैठी थीं। उनकी दृष्टि मेरा अनुसरण कर रही थी। इतने वर्षों बाद अब मैं ठीक ठीक समझ पाया हूँ, मैं चाहे कितना भी दूर क्यों न चला जाऊँ, मैं किसी भी प्रकार उनकी दृष्टिरेखा के बाहर नहीं जा सकता।

उतरते उतरते पहले तो मन में आया, अपने इस सौभाग्य की बात दौड़कर पहले पूजनीय हरि महाराज को बता दूँ। उस समय साढ़े आठ बज चुके थे। सन्देह था कि उनसे मुलाकात

होगी या नहीं। फिर मन में यह भी आया कि मैं मठ से एक दिन के लिए ही आया था, दर्शन करके उसी दिन लौट जाने की बात थी, जबकि मुझे तीन दिन हो चुके थे, और फिर अनिश्चयता के कारण मैंने मठ में कोई सूचना भी नही भेजी थी। इसलिए मैंने तत्काल मठ लौट जाने का निश्चय किया।

पूजनीय हरि महाराज का स्थूल शरीर में मुझे दुबारा दर्शन नहीं मिला। उनके आशीर्वाद से ही मुझे माँ का दर्शन मिला था। अपने पुण्य-स्पर्श से उन्होंने मेरा तन-मन पवित्र कर दिया था, प्रार्थना द्वारा मातृदर्शन की सारी बाधाएँ दूर कर दी थीं और अपने शक्तिपूर्ण प्रेरणा से द्रुत गति से गन्तव्य पथ पर परिचालित किया था। मैं अपने हृदय की सारी कृतज्ञता उन्हें जता नही सका, इसका मुझे अब भी दुख होता है।

मठ जाकर महापुरुष महाराज को मैंने सारी बातें बतायी। वे खुश होकर बोले, "तुम्हारा भाग्य अच्छा है, नहीं तो इतना सब संयोग कैसे जुट पाता। तुमने माँ का दर्शन पाया – उन्होंने तुमसे बात की, आशीर्वाद दिया, यह क्या साधारण बात है? तुम्हारा मंगल होगा, मै कह रहा हूँ, खूब मंगल होगा। ठाकुर ने तुम पर कृपा की है।"

उस बार आठ-दस दिन बेलूड़ मठ में रहने के बाद स्वयं को मठ में ही छोड़, केवल देहमात्र को लेकर घर लौट गया।

१९१९ ई. के अगस्त में रामकृष्ण मिशन की ओर से बाँकुड़ा जिले में दुर्भिक्ष-पीड़ितों की सेवा का कार्य चल रहा था। स्वामी शिवानन्द जी ने मुझे लिखा, "बाँकुड़ा जिले के इदपुर अंचल में हमारे मठ के दो साधुओं ने अकाल-राहत कार्य आरम्भ किया है। वहाँ एक कर्मी की जरूरत है, अत: पत्र पाते ही तुम चले आना। हम लोग तुम्हें बाँकुड़ा के सेवा-कार्य में भेजेंगे।" पत्र पाने के दो-तीन घण्टे के भीतर ही मैं केवल एक वस्त्र में गृहत्याग कर बेलूड़ मठ के लिए चल पड़ा। तीसरे दिन मठ पहुँच कर महापुरुष महाराज को प्रणाम करते ही वे आनन्द से बोल पड़े, "आ गए? अच्छा किया? आज रात ही बाँकुड़ा जाना होगा।"

इदपुर जाकर मै भी सेवा-कार्य में लग गया। वहीं बाँकुड़ा जिला में श्री माँ का घर है और तब वे जयरामबाटी में ही थीं। माँ का दर्शन तथा कृपा पाने का यह अच्छा अवसर समझकर अपनी मनोकामना व्यक्त करते हुए मैंने महापुरुष महाराज को पत्र लिखा कि वे यदि दया करके मेरी दीक्षा के विषय मे माँ को लिख दें, तभी मुझे उनकी कृपा मिल सकती है।

पत्र पाते ही महापुरुष महाराज ने उत्तर दिया, "तुम माँ के श्रीचरणों का दर्शन करना चाहते हो, यह अति उत्तम बात है। जाकर उनसे कहना – 'शिवानन्द स्वामी (तारक महाराज) ने मुझे आपके श्रीचरणों के दर्शन करने आपके पास भेजा है। उन्होंने ही मुझे बाँकुड़ा में अकाल-पीड़ितों की सेवा करने भेजा था, वहाँ से आपके श्रीचरणों का दर्शन तथा कृपा पाने को आया हूँ। आप कृपा कीजिए।' इतना कहते ही वे तुम पर दया करेंगी। वे दया का द्वार खोले बैठी हैं, किसी को लौटाती नही। अत: इस हेतु अलग से पत्र देने की जरूरत नही है। इसी पत्र का उनके श्रीचरणों में पाठ करना, इसी से होगा।"
महापुरुष महाराज का पत्र पाकर मुझे अपार आनन्द हुआ। हृदय आनन्द व आशा से भर उठा। पर जिस कार्य से आया था, उसे छोड़कर जाना तो सम्भव नही था। मैं माँ के दर्शन हेतु जाने के लिए सुअवसर की प्रतीक्षा करने लगा।

इसी पत्र में महापुरुष महाराज ने दो गमछे मँगाये थे। मैंने स्थानीय हाट से उन्हें खरीदकर रजिस्ट्री डाक से भेज दिये। गमछे पाकर महापुरुष महाराज ने लिखा, "तुम्हारे भेजे दोनों गमछे आज मुझे मिले। माँ की कृपा बड़े भाग्य से मिलती है। तुम जाकर उनके चरणो में प्रणत होकर कहना, 'माँ, मुझ पर कृपा कीजिए। तत्पश्चात् वे दया करके जो भी कहेंगी, उसी को शिरोधार्य करना। यदि वे कृपा करके तुम्हे मंत्र दे तो समझना तुम परम भाग्यवान हो। वे हम सभी की माँ हैं। उनके दिये मंत्र से तुम्हारा जन्म सार्थक होगा। इससे मुझे भी परम आनन्द होगा। वे प्रभु का ही नाम देंगी, सबको वही देती है।"

पत्र पाकर मन माँ का दर्शन करने को व्याकुल हो उठा। मैं भगवान से कातर प्रार्थना करके लगा और सुअवसर भी आ गया। कुछ दिनों की छुट्टी पाकर मैं माँ के दर्शनार्थ चल पड़ा।

पैदल चलकर मैं बाँकुड़ा आश्रम पहुँचा और वहाँ से ट्रेन से गड़बेता गया। स्थानीय आश्रम मे एक रात बिताकर भाद्र के प्रारम्भ में एक सुबह पुण्य-क्षेत्र जयरामबाटी के लिए रवाना हुआ। मै नंगे पैर था और रास्ता कीचड़ तथा फिसलन से परिपूर्ण था। रास्ते में पानी भी बरसा। शाम के पाँच बजे जब मैं जयरामबाटी ग्राम में पहुँचा, उस समय मेरी छाती इतने जोर से धड़कने लगी कि मैं स्वयं ही उसे सुन पा रहा था। रास्ते के दोनों ओर छोटे छोटे मिट्टी के बने घरों को पीछे छोड़ता मैं माँ के घर के द्वारा पर जा पहुँचा। यद्यपि मैंने कोई पत्र नहीं लिखा था, तथापि माँ को मानो मेरे आने का पता था। सेवक महाराज से परिचय देकर माँ के दर्शन करने का बात करते ही वे मुझे भीतर ले गए। उस समय माँ भीतर का दरवाजा पकड़कर खड़ी थीं। प्रणाम करके सिर उठाते ही माँ आवेगपूर्वक बोली, "अहा, बच्चे का मुख सुख गया है, सारे दिन कुछ खाने को नहीं मिला। इसे कुछ खाने को दो।" जेब से महापुरुष जी का पत्र निकालकर जब मैं पढ़ने जा रहा था, तो माँ बोलीं, "चिट्ठी बाद में सुनूँगी। अभी बेटा, हाथ-मुँह धोकर कुछ खा लो।"

हाथ-मुँह धो लेने के बाद सेवक महाराज मुझे पास के कमरे में ले गए। आसन बिछा था, सामने गिलास में पानी, एक प्लेट में मुरमुरा और ताल का खीर रखा था। सिर नीचा किए माँ के बारे में सोचते सोचते मैंने सब खा लिया। कैसा

अमृत था ! जीवन में कितने ही बार मैंने मुरमुरे तथा तालखीर खाया है, परन्तु ऐसा अमृत-जैसा तो पहले कभी नहीं लगा।

जयरामबाटी में माँ को मैंने ठीक माँ के जैसा ही पाया। मेरे आने की प्रतीक्षा में वे मलिन वस्त्रों में खड़ी थीं। स्नेह और करुणा की प्रतिमूर्ति ! लगभग दस महीने पूर्व जब बागबाजार में 'उद्बोधन-भवन' में माँ का दर्शन किया था, तब उनके प्रति इतने अपनत्व का बोध नहीं हुआ था।

थोड़ी देर बाद ही मैं पुन: माँ के पास गया। वे अपने कच्चे मकान के बरामदे में पैर फैलाकर बैठी थीं और सब्जियाँ काट रहीं थीं। माँ को प्रणाम कर उनके समीप बैठकर मैंने महापुरुष महाराज की चिट्ठी उन्हें पढ़कर सुनाई। उन्होंने 'तारक' (महापुरुष महाराज) के बारे में पूछा, स्नेहपूर्वक अकाल-राहत-कार्य की जानकारी लीं। बाद में दीक्षा के बारे में बोलीं, "तो बेटा, कल बड़ा अच्छा दिन (शायद जन्माष्टमी) है, कल ही तुम्हें मंत्र दूँगी। सुबह कुछ खाना मत, स्नान करके प्रतीक्षा करना। मैं समय पर बुला लूँगी।" तत्पश्चात् उन्होंने बगल के कमरे में स्थित मन्दिर में प्रणाम करने को कहा।

मैं माँ के लिए दवाएँ ले गया था। बाँकुड़ा के संन्यासी डॉक्टर बैकुण्ठ महाराज ने मेरे हाथ से माँ के आमवात के लिए होम्योपैथी दवा भेजी थी। उसे माँ को देते ही वे करुण स्वर से बोलीं, "बैकुण्ठ ने दवा भेजी है? दो बेटा, दो। बैकुण्ठ की दवा से रोग दूर हो जाता है। देखो, सारे शरीर में क्या हुआ है, इस आमवात पीड़ा से मैं तो मर गयी।" यह कहते कहते वे शरीर का वस्त्र हटाकर सारे छाती-पीठ में आमवात दिखाने लगीं। माँ का कष्ट देखकर नेत्रों में जल भर आया। माँ ने दवा को लेकर एक तरफ रख दिया और बड़ी आत्मीयता के साथ बाँकुड़ा के बैकुण्ठ महाराज आदि के सारे समाचार पूछने लगीं। साथ ही और भी अनेक बातें हुईं।

धीरे धीरे संध्या हो आई। हर कमरे में प्रदीप जल दिया गया। माँ के पूजाघर में भी प्रकाश जलाकर धूप-धूना दिया गया। मैं बाहर के बैठकखाने में चला गया।

* * *

उस दिन जयरामबाटी में अन्य कोई भक्त उपस्थित न था। रात में माँ थोड़ी दूर खड़ी होकर मेरा खाना देख रही थीं। पूरे दिन मैं भूखा ही रह गया था, अत: वे बड़े यत्न से मुझे भोजन करा रही थीं। प्रभात की प्रतीक्षा में अधीरता के कारण प्राय: जागकर ही मेरी रात कटी। सुबह तालाब में स्नान कर माँ के बुलावे की प्रतीक्षा में बैठा था। मुझे ज्ञात न था कि दीक्षा के लिए किस प्रकार की तैयारी चाहिए और मैंने पूछा भी नहीं था। रुपया-पैसे आदि भी मेरे पास नहीं थे। लगभग आठ बजे सेवक महाराज मुझे बुलाकर माँ के पूजाघर में ले गए और द्वार बन्द कर स्वयं बाहर निकल आए। माँ आसन पर बैठकर पूजा कर रही थीं, बगल में एक और आसन बिछा था। माँ ने मुझे ठाकुर को प्रणाम करके उसी पर बैठने को कहा। बैठते ही मेरे हाथों में उन्होंने थोड़ा-सा गंगाजल दिया, फिर पूरे शरीर पर गंगाजल छिड़कने के बाद मेरे सिर पर और शरीर पर हाथ फेर दिया। माँ के स्पर्श से मुझे रोमांच होने लगा, हृदय एक अव्यक्त अनिर्वचनीय आनन्द से पूर्ण हो उठा। माँ थोड़ी देर तक आँखें मूँदकर बैठी रहीं, फिर मुझसे पूछीं, "क्या तुम्हें ठाकुर अच्छे लगते हैं?" मेरे सहमति जताते ही उन्होंने तीन बार एक मंत्र उच्चारण करके मुझे भी अपने साथ साथ उसका उच्चारण करने को कहा। इसके बाद सहसा सामने के दीवाल की ओर हाथ बढ़ाकर बोलीं, "ये ही तुम्हारे इष्ट हैं।" तत्काल ही वह स्थान आँखों को चौंधियानेवाली उज्ज्वल प्रकाश से आलोकित हो उठा और वहाँ स्नेहपूर्वक मेरी ओर निहारती हुई एक जीवन्त और ज्योतिर्मयी देवीमूर्ति प्रगट हो गयी। क्षण मात्र में ही सब हो गया। मैं आत्मविस्मृत और विह्वल हो उठा, केवल कुछ सेकेंड के लिए। उस समय माँ का भाव भी अन्य प्रकार का हो गया था। थोड़ी देर बाद ही माँ ने स्नेहपूर्वक कहा, "बेटा, भय लग रह था क्या?" मैं सिर नीचा किए मौन बैठा रहा, उत्तर देने की शक्ति नहीं थी। तत्पश्चात् माँ ने मेरा दाहिना हाथ पकड़कर उंगलियों के हर पर्व का स्पर्श करके जप की पद्धति बता दिया। माँ बोलती जा रही थीं, पर मेरी विचित्र अवस्था हो गयी थी। माँ बारम्बार मेरी उंगलियों के पर्वो का स्पर्श कर मंत्र का उच्चारण करते हुए जप करना सिखाने लगीं और मुझे भी साथ साथ उच्चारण करने को कहा। मैंने वैसा ही किया। तत्पश्चात् वे ठाकुर का चित्र दिखाते हुए बोलीं, "ठाकुर को प्रणाम करो, ये ही तुम्हारे इष्ट हैं, ये ही तुम्हारे गुरु – इहकाल-परकाल के सर्वस्व हैं। ठाकुर ही सर्व-देवदेवी-स्वरूप हैं।" ठाकुर को प्रणाम करके मैंने माँ को भी प्रणाम किया। इसके बाद उन्होंने मुझे यह बताया कि रोज मुझे कितना जप करना होगा और ध्यान के बारे में विविध उपदेश दिये। उस समय मैं यह नहीं जान सका कि माँ कौन है या क्या है, अब भी कुछ नही जानता। लेकिन उस समय मुझे लगा था कि वे अपनी इच्छा मात्र से ईश्वर-दर्शन करा सकती हैं।

माँ के पूजा के आसन के पास ही दो फल रखे थे, उन्हें मेरे हाथ देकर वे बोलीं, "ये फल मेरे हाथ में दो।" मैंने वैसा ही किया। वही सम्भवत: गुरु-दक्षिणा थी। मैं रुपये-पैसे या फल-फूल आदि कुछ भी अपने साथ कुछ नही ले गया था। मेरा पूरा शरीर काँप रहा था।

मैंने माँ को पुन: प्रणाम किया। उन्हें इतना निकट पाकर मैं आनन्द-विह्वल था, बड़ा अच्छा लग रहा था। वे स्नेह-पूर्वक बोलीं, "अब कमरे मे जाकर बैठकर जैसा दिखा दिया है, वैसे ही थोड़ी देर जप करो। उसके बाद जलपान करना।"

* * *

शाम को फिर मैं माँ के पास गया। वे मिट्टी के बरामदे में पैर फैलाए बैठीं सब्जियाँ काट रही थीं। उन्होंने बताया कि बाँकुड़ा के बैकुण्ठ महाराज की दवा से लाभ हुआ है, आमवात थोड़ा घटा है। इधर-उधर की थोड़ी बातचीत के बाद माँ पूछने लगी कि अकाल-पीड़ितों का काम कैसा चल रहा है। मुझे लगा कि अकाल-पीड़ितों के लिए उनका मन बड़ा कातर हो उठा है। मैंने बताया कि किस प्रकार घर घर जाकर गरीब लोगों को टिकट दे आता हूँ, किस प्रकार उनके अभाव और निर्धनता के बारे में पता लगाता हूँ, किस प्रकार वे लोग टिकट लाकर चावल ले जाते है, फिर महिलाओं को कुछ वस्त्र भी दिये गए हैं। साथ ही मैने माँ को एक घटना बतायी, जो माँ के अन्तर को छू गयी।

मैंने बताया कि एक दिन सुबह एक गाँव में मैं पता लगाने गया, तो देखा कि जो लोग चावल ले आए थे, उनमें से कोई भी घर में नहीं था। मैं समझ गया कि वे लोग कहीं काम करने गए हैं। काम मिल जाने पर फिर चावल नहीं दिया जाता था, इसीलिए मै पता लगाने निकला था। मैंने देखा कि एक खेत में घुटने तक कीचड़ भरा है और उसी में बहुत-से लोग धान की रोपाई कर रहे थे। उस ओर जाकर दूर से ही मैंने देखा कि एक महिला खेत से भागकर किनारे पर रोपने के लिए रखे गये धान के गट्ठरों के पीछे जाकर छिप गई। पूछने पर पता चला कि पिछली रात इसे बच्चा हुआ है, उसे लेकर ही वह खेत में काम करने आई है। नवजात शिशु को कपड़े में लपेटकर खेत के किनारे लिटाकर पेट भरने हेतु वह धान रोपने आई है। उसे खेत में काम करते देख लेने पर हम लोगों से चावल नहीं मिलेगा – यह सोचकर वह मुझे दूर से देखते ही छिपने की चेष्टा कर रही थी। बात सुनकर मेरा मन यह सोचकर आन्दोलित हो उठा कि कैसी अवस्था होने पर महिला पिछली रात ही जन्मे शिशु को लेकर खेत में काम करने आ सकती है! मेरे प्राणों में असीम वेदना होने लगी। मैं उसके पास जाकर रुँधे गले से केवल इतना ही कह सका, "नहीं माँ, तुम्हारा चावल नही काटूँगा।" तब वह थोड़ा साहसपूर्वक खड़ी हुई और हाथ जोड़कर बोली, "बाबू, बड़े कष्ट में हूँ, इसीलिए खेत मे काम करने आयी हूँ, इससे दिन में दो सेर धान मिल जायगा।"

यह घटना सुनकर माँ सिहर उठीं, रुँआसी होकर बोलीं, "कहते क्या हो! ऐसी सद्य:प्रसूता खेत में काम करने आयी! ऐसी अवस्था में भी कही धान काटा जा सकता है! तुमने अच्छा किया बेटा! ठाकुर तुम्हारा कल्याण करेंगे!" तत्पश्चात् मानो ठाकुर से मान करती हुई वे प्रार्थना करने लगीं, "ठाकुर! तुम सब देख रहे हो? लोगों की इतनी दुख-दुर्दशा! ऐसे में मनुष्य कैसे रहेगा? इसका कुछ उपाय करो।" माँ के कण्ठ की वह कातर उत्कण्ठा – करुणामूर्ति माँ की वह आवेगपूर्ण प्रार्थना मानो अब भी मेरे कानों में झंकृत हो रही है।

सेवाकार्य के बारे में उन्होंने सारी छोटी-मोटी बातें तक पूछा – हम लोग क्या खाते हैं? कैसे रहते हैं? क्या क्या कार्य करते हैं? आदि आदि। मैंने कहा, "एक दिन एक गाँव में कार्य का निरीक्षण करने गया था। एक छोटी-सी सूखी पहाड़ी नदी थी, बीस-पचीस हाथ चौड़ी, घुटने तक जल था, जिसे सहज ही पारकर मैं उस पार चला गया। फिर जोरों से बारिश हुई। लौटते समय मैंने देखा कि वह सूखी नदी लाल जल से लबालब भर गयी है और पानी बड़े वेगपूर्वक बह रहा है। तब तक शाम भी हो गयी थी। नदी पार करने का और कोई उपाय न देख, मैंने शरीर के कपड़े खोलकर सिर पर बाँध लिया और एक हाथ में छाता लेकर कौपीन पहने ही नदी में कूद पड़ा। फिर एक हाथ से ही तैरते तैरते प्रवाह में बहते हुए किसी तरह दूसरी ओर पहुँचा। नदी मुझे बहुत दूर तक बहा ले गयी थी। नदी-तट पर उगी काँटों के झाड़ी में फँसकर प्राण बचाना कठिन हो गया था।"

घटना को सुनते सुनते माँ का चेहरा वेदनापूर्ण हो उठा। वे करुण स्वर में बोली, "बेटा, ठाकुर ने ही तुम्हारी रक्षा की। उस कँटीली झाड़ी मे फँस जाने पर तुम निकल नहीं पाते। फिर कभी ऐसा मत करना, बेटा।" मेरी सारी दुख-पीड़ा माँ अपने अन्तर में अनुभव कर रही थीं। उनका मातृ-हृदय सन्तान के दु:ख से उद्वेलित हो उठा था। अब भी दुख-विपत्ति में माँ की वह सीख प्राणों में बल प्रदान करती है।

अगले दिन बातचीत के दौरान मेरे द्वारा कामारपुकुर-दर्शन के लिए जाने की इच्छा व्यक्त करने पर माँ की अनुमति नहीं मिली। वे बोलीं, "नहीं बेटा, अभी वहाँ जाने की जरूरत नही है, बाद मे कभी चले जाना। यहाँ किसी प्रकार 'तीन रात' बिताकर लौट जाओ। यह घोर मलेरिया का मौसम है, घर घर में बुखार है। इसीलिए मैं इस समय किसी को यहाँ आने के लिए नही कहती। लेकिन तुम्हें तो तारक ने भेजा है।"

मैंने माँ का आदेश स्वीकार किया। अनेक वर्षो बाद – १९३७ ई. में मैंने कामारपुकुर का दर्शन किया। उस समय जयरामबाटी भी गया। माँ जिस कमरे में रहती थीं, जहाँ बैठती थीं, जिस पूजाघर में दीक्षा दिया था – मैंने उन सब स्थानों का दर्शन और प्रणाम किया।

* * *

मेरे पास केवल एक रुपया था, अत: मै गुरुदक्षिणा भी नहीं दे सका और मुझे गुरुसेवा का कोई सुयोग भी नहीं मिला। इस कारण मेरे मन में बड़ी अशान्ति थी। अगले दिन जब सुना कि माँ के सेवक वरदा महाराज कुतुलपुर हाट जा रहे हैं, तो माँ को प्रणाम कर मैं भी उनके साथ हाट गया। खेत के रास्ते पानी-कीचड़ पार करते हुए छह मील चलकर जाना पड़ता है। वरदा महाराज ने वहाँ एक टोकरी सब्जियाँ तथा

अन्य चीजें खरीदीं। मैंने माँ के लिए मिश्री का एक डला खरीद लिया। दोपहर में कोयलपाड़ा आश्रम में भोजन करके अपराह्न में वह टोकरी सिर पर लिए जयरामबाटी लौट आया। उस टोकरी में माँ के उपयोग की चीजें थीं, उन्हें लाना भी माँ की ही सेवा हुई। जयरामबाटी में पहुँचकर मैंने ज्योंही माँ को अपनी लायी हुई मिश्री दी, तो उन्होंने दोनों हाथ बढ़ाकर उसे ले लिया और खुश होकर बोलीं, "अच्छा किया, बेटा। मै रोज थोड़ी थोड़ी मिश्री का शर्बत पीऊँगी।" मेरे नेत्रों में आँसू भर आए। केवल पाँच आने की मिश्री। उसे माँ ने इतने प्रेम से ग्रहण किया। मैं तो माँ की कोई सेवा ही न कर सका, अत: शाम होने के पूर्व ज्योंही देखा कि पुण्यपुकुर के किनारे सेवक हरिप्रेम महाराज बैगन के पौधे लगाने के लिए खेत में कुदाल से मिट्टी काट रहे हैं, तो मैंने उनके हाथ से कुदाल लेकर जमीन तैयार कर बैगन के पौधे लगा दिए। मन में आया कि इन पौधों में फलनेवाले बैगन माँ की सेवा में लगेंगे।

इसी प्रकार 'तीन रात' बीत गये। चौथे दिन शाम को माँ को प्रणाम कर विदा लेने गया। मेरे प्रणाम करते ही उन्होंने मेरी ठुड्डी छूकर अपना हाथ चूम लिया। मैं अपनी बालबुद्धि से उनके सामने घुटनों के बल हाथ जोड़कर रोते रोते बोला, "माँ, आप मुझे याद रखियेगा।" वे भी करुण स्वर में बोलीं, "हाँ बेटा, तुम्हें याद रखूँगी।" इसी प्रकार मैंने तीन बार प्रार्थना की और प्रत्येक बार उन्होंने यही कहा, "हाँ बेटा, याद रखूँगी।" वे मुझे याद रखेंगी, यह सोचकर अन्तर भर उठा और बोलने की क्षमता नहीं रही, वाणी मूक हो गयी। पुन: माँ को प्रणाम कर उनकी ओर मुख किये उल्टे पैरों से चलते हुए मुख्य द्वार तक आया। तब तक माँ मेरी ओर देखती रहीं। अन्तिम बार माँ को देखकर द्वार के बाहर आ गया और उनके उस करुण मुखमण्डल तथा उनकी बातें सोचते हुए प्राय: तीन मील चलकर कोयलपाड़ा आश्रम पहुँचा। मैंने माँ से भक्ति-मुक्ति की प्रार्थना नहीं की, मन में भी यह बात नहीं आयी थी।

माँ को पाने से ही तो सब पाना हुआ। उनकी करुणा होने से ही सब हुआ। संसार की चक्की में पिसकर मै माँ को भूल सकता हूँ, धूल-कीचड़ से मेरी दृष्टि मलिन हो जा सकती है, पर माँ यदि मुझे याद रखें तभी तो मैं सुपथ पर चल सकता हूँ। "माँ यदि मेरा स्मरण कर मुझे गोद में उठा लें, गोद में रखें, संसार की मलिनता से रक्षा करें, तभी तो मैं निर्मल-सुन्दर हो पाऊँगा" – यही सोचकर केवल मैंने माँ से प्रार्थना की थी, "आप मुझे याद रखियेगा।" तीन बार मैंने केवल यही प्रार्थना की थी और तीनों बार उन्होंने अभय देते हुए कहा था, "हाँ बेटा, तुम्हें याद रखूँगी।" बाद में उनके सेवक वरदा महाराज के मुख से मैंने सुना कि मेरे चले आने के बाद माँ ने उन्हें बुलाकर कहा था, "देखो जी, लड़के ने तीन बार 'हाँ' करा लिया!" माँ के मुख से जो भी निकलेगा, वही सत्य होगा। उन्होंने तीन बार वचन देकर कहा था कि मुझे हीं भूलेंगी। यही मेरे जीवन की चरम उपलब्धि, परम आशीर्वाद, परम अभय-बल-भरोसा और सान्त्वना है।

कोयलपाड़ा आश्रम में रात बिताकर अगली सुबह हल्की बारिस में ही मैं कोतुलपुर मार्ग से विष्णुपुर के लिए चल पड़ा। चौबीस मील जल-कीचड़ में पैदल चला, साथ मे छाता भी न था। भारी वर्षा के समय वृक्षों का आश्रय लेते संध्या-पूर्व जब मैं विष्णुपुर पहुँचा, तब तक अधमरा-सा हो चुका था।

सेवा-केन्द्र में निरापद पहुँचने की खबर मैंने माँ को जिस पत्र में लिखा उसी में यह भी लिखा कि कैसे मैं कोयलपाड़ा से विष्णुपुर की चौबीस मील की यात्रा वर्षा तथा कीचड़ से होकर बड़े कष्टपूर्वक सम्पन्न की थी। वह पत्र पाकर माँ मेरे लिए बड़ी उद्विग्न हुई थीं। सेवक वरदा महाराज ने मुझे लिखा.– रास्ते के कष्ट की बात भी क्या इस प्रकार लिखनी चाहिए? वे बड़ी अधीर हो उठी हैं, आदि। उत्तर में मैंने लिख दिया कि मै भला-चंगा हूँ। पर मेरे मन में इस बात का जरा भी दुख न था कि मैंने पत्र लिखकर माँ को उद्विग्न क्यों किया, बल्कि यह सोचकर मुझे आनन्द ही हुआ की माँ मेरे लिए चिन्तित थीं और उनके आशीष से ही इस मलेरिया के समय भी मैं स्वस्थ हूँ। सन्तान के लिए माँ नही सोचेंगी, तो कौन सोचेगा?

१९२० ई. की बात है। मुझे महापुरुष महाराज का पत्र मिला कि माँ गम्भीर रूप से बीमार हैं। समाचार पाकर मेरा मन माँ को देखने के लिए छटपटाने लगा। मठ लौटने की प्रार्थना व्यक्त करते हुए मैंने महापुरुष महाराज को पत्र लिखा। उत्तर में उन्होंने अनुमति देते और साथ मे किराये के रुपये भेजते हुए लिखा कि कुछ दिन और वही रहना मेरे स्वास्थ्य की दृष्टि से उत्तम होता, परन्तु यदि माँ को देखने की प्रबल इच्छा हुई है, तो लौटकर मठ आ सकते हो।

कुछ दिनों बाद मठ लौटकर अगले ही दिन माँ के दर्शन हेतु मैं उनके घर गया। लेकिन माँ का स्वास्थ्य अत्यन्त खराब होने के कारण दर्शन आदि बन्द था। तो भी यह जानकर कि मैं मठ से आया हूँ, पूजनीय शरत् महाराज की विशेष अनुमति से केवल दूर से दर्शन और प्रणाम करके और माँ के स्वास्थ्य का सारा समाचार लेकर मैं मठ लौट आया। माँ के श्रीचरणों का स्पर्श करके प्रणाम नहीं कर सका; माँ से दो बाते भी नही कर सका। इससे मेरे मन में बड़ा कष्ट हुआ। उस समय जयरामबाटी मे माँ को जैसा देखा था, उनके पास बैठकर जैसे बातें की थीं, उनके श्रीचरणो को स्पर्श कर प्रणाम किया था – ये सब बाते बहुत याद आने लगी।

माँ की बीमारी के कारण से महापुरुष महाराज प्रतिदिन मठ से किसी को माँ के स्वास्थ्य-विषयक सूचना लाने के लिए 'उद्बोधन' भेजते थे। तब तक मठ में टेलीफोन या बिजली

नहीं आई थी। माँ के घर से लौटकर महापुरुष महाराज को प्रणाम करते ही वे मुझसे माँ के बारे में पूछने लगे। माँ के हाथों तथा पाँवों में सूजन दीख पड़ा था। उनके दोनों पैर फूल गए थे और उन्हें भोजन से बड़ी अरुचि हो गयी थी। पूजनीय शरत् महाराज ने कहा था कि वैद्यजी ने पथ्य के रूप में श्वेत पुनर्नवा का साग और अरुचि के लिए अमरूल-साग की चटनी बनवाकर खिलाने को कहा है। सुनते ही महापुरुष महाराज ने कहा, "मठ के बगीचे में तो बहुत पुनर्नवा हुआ है, अमरुल का साग भी काफी है, तुम रोज सुबह माँ के लिए कुछ पुनर्नवा तथा अमरूल-साग ले जाना और माँ के स्वास्थ्य का हाल ले आना।" उनके कथनानुसार मैं रोज सुबह कुछ अच्छे पुनर्नवा तथा अमरुल के साग केले के पत्ते में बाँध लेता। उसके बाद मैं नौका से गंगा पारकर कोठी घाट से पैदल चलकर आठ बजते बजते उद्‌बोधन पहुँचकर यह शाक सेवक महाराज के हाथ में दे देता और दूर से माँ को प्रणाम कर उनके स्वास्थ्य का समाचार लेकर मठ लौटता और महापुरुष महाराज को बताता। महापुरुष महाराज अत्यन्त व्यग्रता से सब सुनते। मठ के अन्य साधु लोग भी सुनते। मुझे लगभग डेढ़ महीने तक प्रतिदिन माँ के दर्शन का यह सुयोग मिलता रहा। सबसे आश्चर्य की बात यह कि प्रतिदिन दूर से प्रणाम करते समय मैं देखता कि माँ रोगजीर्ण शरीर में बरामदे के द्वार की ओर मुख करके फर्श पर लेटी हैं और मैं जब प्रणाम करता हूँ उस समय मुझे सतृष्ण नेत्रों से स्नेहपूर्वक देख रही हैं। अहा! उन नेत्रों में कितना स्नेह, ममता और करुणा थी! वे बोलती नहीं थीं, पर उनके नेत्रों से करुणा बरसती थी, – स्नेह-ममता का स्पर्श मिलता था। उनसे दृष्टि मिलते ही मेरा उसी के माध्यम से उनके साथ मिलन होता। मेरा अन्तर वे स्नेह से भर देतीं, हृदय एक अनिवर्चनीय दिव्यानन्द से परिपूर्ण हो उठता। घुटने टेके हाथ जोड़कर मौन प्रार्थना करते हुए प्रणाम् करके जब मैं लौटता, उस समय माँ के स्निग्ध सजल नेत्रों से मानो करुणा बरसती रहती और जितनी दूर तक दिखाई देता, मैं देखता कि वे अपलक नेत्रों से मुझे ही देख रही हैं।

इसी काल में एक दिन माँ के घर से लौटकर जब मैंने महापुरुष महाराज को प्रणाम किया, तो वे माँ का कुशलक्षेम पूछने लगे। चिकित्सा तथा पथ्य आदि के बारे में बताने के बाद जब मैंने कहा कि पिछली रात उन्हें जरा-सी भी नींद नहीं हुई है, पूरे शरीर में असह्य जलन से वे छटपटाती रहीं है, तो सुनकर महापुरुष महाराज के नेत्र अश्रुपूर्ण हो उठे। वे रुँधे गले से बोले, "अहा, सबके पाप ग्रहण कर लेने के कारण ही तो माँ को ऐसी बीमारी हुई है। इसलिए तो उनके सर्वांग में विष की जलन है। उन्होंने अपनी सैकड़ों सन्तानों के पाप-ताप स्वयं पर लेकर उन्हें निष्पाप कर दिया है। ठाकुर और माँ – दोनों की कृपा एक ही है। ठाकुर अब नरदेह त्यागकर माँ के शरीर में निवास कर रहे हैं। जिसने भी माँ की कृपा पाई है, उसका यह अन्तिम जन्म है। माँ, माँ, तुम भक्तों के लिए कितना कष्ट सहन कर रही हो!

"एक दिन ठाकुर ने मुझसे कहा था, 'वह जो नौबतखाने में है और जो मन्दिर में भवतारिणी (काली) हैं – एक ही हैं।' उन दिनों क्या मैं इतना समझता था! उन्होंने जब यह बात कही, तो सुनकर मैं अवाक् रह गया था। जिसने भी माँ का दर्शन किया है, वह मुक्त हो जाएगा। माँ का दर्शन क्या कम सौभाग्य की बात है?" कहते कहते उनका गला रुँध गया।

तब मैंने रोते रोते कहा था, "माँ का प्रतिदिन दर्शन तो करता हूँ, पर माँ के मुँह से एक बात भी नहीं सुन पाता। बारम्बार मन में आता है – अहा! माँ यदि कुछ कहतीं!"

इस पर महापुरुष महाराज ने बड़े आवेगपूर्ण कण्ठ से कहा, "माँ जो तुम्हारी ओर निहारती हैं, यही तो उनका आशीर्वाद है। उन्होंने तुम्हें कृपादृष्टि से देखा है। तुम्हारा जीवन धन्य हो गया है। उनका स्वास्थ्य इतना खराब है, वे तुमसे बातें कैसे करेंगी? वे इतनी दुर्बल हैं कि बोलने की शक्ति तो उनमें है ही नहीं! उनके स्वस्थ हो जाने पर तुम उनके मुँह से बातें सुन सकोगे।" महापुरुष महाराज की वह शुभेच्छा एक अलौकिक उपाय से अक्षरश: सत्य हुई थी।

अपने देहत्याग की रात में, माँ ने दिव्य देह में, ज्योतिर्मयी रूप में मुझे अपना अन्तिम आशीर्वाद दिया था। २० जुलाई, १९२० ई. का दिन था। प्रतिदिन जैसे सोता था उस दिन भी वैसे ही सो गया। रात के लगभग डेढ़ बजे मुझे अद्‌भुत रूप से माँ का दर्शन मिला। वह दर्शन असाधारण था। मैंने माँ को ज्योतिर्मयी मूर्ति में देखा। वे स्नेहपूर्वक मेरी ओर देख रही थीं। मुझे मधुर स्वर में सम्बोधित कर वे बोलीं, "बेटा, मैं जा रही हूँ।" इस अद्‌भुत दर्शन का मर्म मैं जरा भी समझ नहीं सका, पर माँ के देहत्याग का मर्मान्तक संवाद मिलने पर सब कुछ समझ में आ गया। जिस समय मुझे माँ का दर्शन मिला, लगभग उसी समय माँ ने 'उद्‌बोधन'-भवन में मर्त्य-देह का त्याग किया था।

❑❑❑

ट्रस्टीशिप

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी ने आकाशवाणी के चिन्तन कार्यक्रम के लिए विविध विषयों पर अनेक विचारोत्तेजक लेख लिखे थे. जो उसके विभिन्न केन्द्रों द्वारा समय समय पर प्रसारित किये जाते रहे हैं तथा काफी लोकप्रिय हुए हैं। प्रस्तुत लेख आकाशवाणी, रायपुर से साभार गृहीत हुआ है। - सं.)

महात्मा गाँधी अपने समीप के धनिकों को बारम्बार 'ट्रस्टीशिप' का उपदेश देते थे। उनका तात्पर्य यह था कि सम्पत्ति का स्वामी अपने को मत मानो, बल्कि यह समझो कि ईश्वर ही सम्पत्ति का स्वामी है और तुम उसकी सुरक्षा और देखरेख करने वाले ट्रस्टी हो। यह एक अमूल्य उपदेश है। जब मैं अपने को सम्पत्ति का स्वामी मानता हूँ, तो उसके व्यय में किसी का हस्तक्षेप मैं स्वीकार नहीं करता, मैं मनमाने खर्च किये जाता हूँ। किसी का अकुश मुझे भाता नहीं। पर यदि मेरे अन्तःकरण में यह भावना बन जाय कि सम्पत्ति के किसी भी अश का दुरुपयोग न होने पाये। सम्पत्ति पर स्वय के स्वामित्व की भावना उसे साधारणतया दूसरे के काम में नहीं लगने देती. पर ट्रस्टीशिप का भाव कहता है कि यह सम्पत्ति दूसरों की सेवा के लिए समर्पित है। ट्रस्टी सम्पत्ति को भगवान् की थाती के रूप में दुःखियों, पीड़ितों और असहायों की सेवा में उसे लगाकर धन्यता का बोध करता है। विशेषकर, मठ-मन्दिर और सार्वजनिक न्यासों की सम्पत्ति को जो अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए खर्च करता है, उसके समान निन्दित व्यक्ति और कोई नहीं माना गया।

इस सम्बन्ध में वाल्मीकि रामायण में एक उद्‌बोधक कथा आती है। एक कुत्ते ने प्रभु राम के दरबार में आकर फरीयाद की कि स्वार्थसिद्ध नामक एक ब्राह्मण ने उसके सिर पर अकारण ही प्रहार किया है। उस ब्राह्मण को रामचन्द्र जी के समक्ष प्रस्तुत किया गया। वह बोला, "हे राघव, मैं क्षुधित था। सामने कुत्ते को बैठा देखकर मैंने उससे हटने को कहा। उसके न हटने पर मुझे क्रोध आ गया और मैंने उस पर प्रहार किया। महाराज, मुझसे अवश्य ही अपराध हुआ है. आप मुझे जो चाहें दण्ड दें।"

राजा राम ने अपने सभासदों से ब्राह्मण को दण्ड देने बाबत परामर्श किया। सबने एक स्वर से निर्णय दिया - "ब्राह्मण को भले ही उच्च कहा गया हो, पर आप तो परमात्मा के महान् अंश हैं, अतः आप अवश्य ही उचित दण्ड दे सकते हैं।" इस बीच कुत्ता बोला, "प्रभो, मेरी इच्छा है कि आप इसे कलिंजर मठ का मठाधीश बना दें।" यह सुनकर सबको आश्चर्य हुआ, क्योंकि तब तो ब्राह्मण को भिक्षावृत्ति से छुटकारा मिल जाता और मठाधीश होने के बाद उसे सारी सुख-सुविधाएँ प्राप्त हो जातीं। रामचन्द्र जी ने कुत्ते से ब्राह्मण को मठाधीश बनाने का प्रयोजन पूछा। उस पर कुत्ता बोला, "राजन्, मैं भी पिछले जन्म में कलिंजर का मठाधीश था। मुझे वहाँ बढ़िया बढ़िया पकवान खाने को मिलते थे। यद्यपि मैं पूजा-पाठ करता था, धर्माचरण करता था, तथापि मुझे कुत्ते की योनि में जन्म लेना पड़ा। इसका कारण यह है कि जो व्यक्ति देव, बालक, स्त्री और भिक्षुक आदि के लिए अर्पित धन का उपभोग करता है, वह नरकगामी होता है। यह ब्राह्मण अत्यन्त क्रोधी और हिंसक स्वभाव का तो है ही साथ ही मूर्ख भी है, अतः इसको यही दण्ड देना उचित है।"

इस कथा के माध्यम से यही बात ध्वनित की गयी है कि जो सार्वजनिक सम्पत्ति को अपने ही स्वार्थ के लिए लगाता है, उसकी दशा अन्त में श्वान की सी होती है। इसके साथ ही यह बात भी सत्य है कि अपनी सम्पत्ति का भी केवल अपने स्वार्थ के लिए उपयोग मनुष्य को नैतिक दृष्टि से नीचे गिरा देता है। गीता की भाषा में मनुष्य को यह सम्पत्ति प्रकृति के यज्ञ-चक्र से प्राप्त हुई है, अतः उसे उसका उपयोग यज्ञ-चक्र को सुचारू रूप से चालित होने के निमित्त करना चाहिए। जैसे यदि कहीं पर वायु का अभाव पैदा हो. तो प्रकृति तुरन्त वहाँ वायु भेज देती है, उसी प्रकार जहाँ सम्पत्ति का अभाव है. उसकी पूर्ति में जिसके पास सम्पत्ति है. उसका उपयोग होना चाहिए। यही सम्पत्ति के द्वारा यज्ञ-चक्र को पूर्ण बनाना है। इसी को ट्रस्टीशिप कहते हैं। यदि ऐसा न कर व्यक्ति सम्पत्ति का भोग स्वय करे. तो उसे गीता में 'स्तेन' यानी चोर की उपाधि से विभूपित किया गया है।

अपने पास जब आवश्यकता से कुछ अधिक हो जाय, तो उसका समाज के अभावग्रस्त लोगों में वितरण करना 'अपरिग्रह' कहलाता है। यह अपरिग्रह और ट्रस्टीशिप एक दूसरे के पूरक हैं। सम्पन्न लोगों को यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि यदि उन्होंने ट्रस्टीशिप की भावना को जीवन में अगीकार न किया और तदनुरूप आचरण को न बदला, तो अभावग्रस्त लोगों के हृदय की टीस, उनका विक्षोभ और आक्रोश उनके जीवन को अशान्त और तनावों से युक्त बना देगा। ❑ ❑ ❑

धनुष-यज्ञ का तात्पर्य (१/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(आश्रम द्वारा जनवरी २००२ ई. मे आयोजित विवेकानन्द-जयन्ती-समारोह के समय पण्डितजी ने 'धनुष-यज्ञ' पर ७ प्रवचन दिये थे। प्रस्तुत लेख उसके प्रथम प्रवचन का उत्तरार्ध है। टेप से इसे लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी ने किया है। – सं.)

भगवान के ये तीन रूप – चित्रकार के आँखों में दिखाई देनेवाला रूप, अपनी आँखो में दिखाई देनेवाला रूप और उनका स्वरूप – तीनों ही कल्याणकारी हैं। यह नहीं कि चित्र में दिखाई देनेवाला रूप तो श्रीराम का स्वरूप नहीं हैं, उनका असली रूप नहीं है, इसलिए उनके सारे चित्र हटा दें, उसकी पूजा या प्रणाम न करें। **आप असली-नकली के फेर में न पड़िए। जिसे देखकर आपको भगवान का स्मरण आ रहा है, ध्यान हो रहा है, वह रूप बड़ा अच्छा है, बड़ा सुन्दर है।**

परन्तु एक अन्तर आ ही जाता है! वह मधुर प्रसंग तब आता है, जब मनु ने भगवान से अवतार लेने के लिए प्रार्थना की, तो उनके सामने भगवान के अनेक रूप आए। ब्रह्मा भी भगवान का ही एक रूप है, पर आप पढ़ते हैं कि –

बिधि हरि हर तप देखि अपारा।
मनु समीप आए बहु बारा।।
मागहु बर बहुँ भाँति लोभाए।
परम धीर नहिं चलहिं चलाए।। १/१४४/२

वे रूप मनु को आकृष्ट नहीं कर पाए और उन्होंने उनके समक्ष इच्छा भी प्रकट नही की। तत्पश्चात् आकाशवाणी हुई। तब वे भगवान से बोले – "मैं जानता हूँ कि आप तो अरूप हैं, अनाम हैं, अनादि-अखण्ड हैं, पर ऐसे होते हुए भी भक्त की इच्छा पूर्ण करने के लिए लीला-शरीर धारण करते हैं" –

नेतिं नेति जेहि बेद निरूपा।
निजानन्द निरुपाधि अनूपा।।
संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना।
उपजहिं जासु अंस तें नाना।।
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई।
भगत हेतु लीलातनु गहई।। १/१४३/५-७

मंच पर अभिनय करते समय व्यक्ति उसमें जो बनता है, वह वस्तुत: वह नहीं होता, पर नाटक के आनन्द के लिए वह वैसा रूप बना लेता है। मनु ने कहा – मैं आपको देखना चाहता हूँ। आकाशवाणी हुई – तुम्हारे सामने तो कई रूप आए, पर तुम्हें कोई भी प्रिय नहीं लगा, तुम कौन-सा रूप देखना चाहते हो? तब मनु जो प्रार्थना करते है, उसका हर शब्द ऐसा है कि यदि उसकी व्याख्या करूँ, तो वही प्रसंग चलता रहेगा। बड़ा गहन प्रसंग है। वहाँ आप पढ़ते हैं –

जो सरूप बस सिव मन माहीं।
जेहि कारन मुनि जतन कराहीं।।
जो भुसुंडि मन मानस हंसा।
सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा।।
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन।
कृपा करहु प्रनतारति मोचन।। १/१४६/४-६

मनु द्वारा शंकरजी और भुशुण्डिजी का नाम लेने का क्या अभिप्राय है? शंकरजी 'स्वरूप' के ज्ञाता हैं और भुशुण्डिजी 'रूप' के प्रेमी हैं। भुशुण्डिजी तो मुनियों से भी कह देते है कि हमें तो अयोध्या के आँगन में खेलनेवाले राम का रूप ही चाहिए। मनु बोले – हम भी वही देखना चाहते हैं। प्रभु ने उनकी आकांक्षा पूरी की। इस प्रकार मनु ने ही दशरथ के रूप में जन्म लिया और प्रभु उनकी इच्छानुसार रूप बनाकर उनके समक्ष आए। दूसरी ओर जिनका प्रसंग चल रहा है, वे राजा जनक रूप के अभिलाषी नही हैं। वे प्रभु का 'स्वरूप' या 'तत्त्वज्ञान' चाहते है, वे निर्गुण-निराकारवादी हैं। उनकी मान्यता है कि ब्रह्म तो निर्गुण-निराकार है और केवल भक्त को दर्शन कराने के लिए रूप ग्रहण करता है। उनका मुख्य स्वरूप तो निर्गुण-निराकार है। ये दो विचार-धाराएँ हैं। यहाँ पर गोस्वामीजी ने बड़ा मधुर सम्मेलन किया है। उन्होंने सगुण तथा निर्गुण का, रूप और स्वरूप का बड़ा सुन्दर समन्वय किया है। यहाँ वह बड़ा सरस और बड़ा गम्भीर हो गया है।

जिस समय महर्षि विश्वामित्र के साथ जनकजी ने भगवान राम तथा लक्ष्मण को देखा, उस समय वे दोनों पुष्पवाटिका देखकर लौटे थे। (यह वह पुष्पवाटिका वाला प्रसंग नहीं है, जब श्रीसीताजी से साक्षात्कार होता है। उससे पहले का है।) श्रीराम के आते ही महाराज जनक और जनकपुर के सभी विशिष्ट लोग खड़े हो गए।

उठे सकल जब रघुपति आए।
बिस्वामित्र निकट बैठाए।। १/२१४/६

तब महाराज जनक की दृष्टि भगवान राम के रूप की ओर चली गई। जो निर्गुण-निराकारवादी था, जो स्वरूपवादी था, वह वह रूपवादी बनता हुआ दीख रहा है –

मूरति मधुर मनोहर देखी।
भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी।। १/२१४/८

जनक को बिल्कुल तन्मय देखकर विश्वामित्र के होठों पर हँसी आ गई – अब तक तो तुम रूप को मिथ्या मानते रहे, पर आज तो सब ज्ञान भूल गया, आज तो तुम 'रूप' को एकटक देख रहे हो। उन्होंने जनकजी ने पूछा – तुम तो इतने बड़े तत्त्वज्ञ हो, तुम बताओ कि तुम्हें क्या लग रहा है? –

कहहु नाथ सुन्दर दोउ बालक ।
मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक ।। १/२१५/१

ब्रह्म के 'स्वरूप' का वर्णन 'नेति, नेति' (यह नहीं, यह नहीं) कहकर ही किया जाता है; 'स्वरूप' का वर्णन ऐसा नहीं किया जा सकता कि 'वह ऐसा है'। बस इतना कहा जा सकता है कि 'ऐसा नहीं है'। जनकजी तत्त्वज्ञान की भाषा बोले – मुझे ऐसा लगता है कि वही ब्रह्म दो रूप बनाकर आया है –

ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा ।
उभय वेष धरि की सोइ आवा ।।
सहज बिराग-रूप मनु मोरा ।
थकित होत जिमि चंद चकोरा ।। १/२१६/२,४

अब यहाँ भी वही 'सहज' शब्द आता है। जनकपुर-प्रसंग में यह शब्द कई बार आया है। यह कोई साधारण शब्द नहीं है। यह तत्त्वज्ञान और भगवान के दिव्य-स्वरूप की दृष्टि से बड़ा सांकेतिक शब्द है। राजा जनक सहज और महान् विरागी हैं। यहाँ सहज का क्या अर्थ है? एक वस्तु तो वह है, जिसे आपने प्रयत्न और साधना से पाया; वह भी वस्तु है, हितकर है, आपके परिश्रम का फल है। दूसरी ओर एक वस्तु ऐसी भी है, जिसे पाने के लिए आपने कोई चेष्टा नहीं की, पर वह भी उपलब्ध है। वह सहज है, उसके लिए कोई साधन, कोई प्रयत्न, कोई संकल्प, कुछ भी नहीं लगा। वैराग्य की साधना कितनी कठिन है, यह हमें उत्तरकाण्ड से ज्ञात होता है। काफी कुछ करने के बाद ही वैराग्य की प्राप्ति होती है। पर महाराज जनक के जीवन में जो वैराग्य है, वह उस प्रकार का नहीं है। उस वैराग्य को पाने के लिए उन्होंने कोई साधना या प्रयत्न जैसा कुछ नहीं किया है। वे स्वीकार करते हैं कि आज मैं स्वयं में परिवर्तन पा रहा हूँ। बोले – "मेरे मन में वैराग्य तो सहज रूप से विद्यमान था, संसार तो क्या विश्व ब्रह्माण्ड की कोई भी वस्तु मुझे अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर पाती थी, पर आज मुझे लग रहा है कि आज मेरा मन थकित हो रहा है और जैसे चकोर चन्द्रमा को देखता है, वैसे ही मैं 'रूप' को देख रहा हूँ। अत: यह तो स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि मैं जो निर्गुण, निराकारवादी हूँ, ब्रह्म को सगुण-साकार रूप में स्वीकार नहीं करता, पर आज मैं अपनी ब्रह्मनिष्ठा से अलग होकर इस रूप में आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ।"

महर्षि विश्वामित्र को प्रसन्नता हुई। क्योंकि ब्रह्म का स्वरूप तो अनुभूति का विषय है; वह कोई सामने दिखनेवाली वस्तु नहीं है। ऐसी स्थिति में स्वरूप का आनन्द वह व्यक्ति उठाता है, जो उसकी अनुभूति से जुड़ा हुआ है। और 'रूप'? रूप तो बाहर आयेगा और उसके बाहर आने पर अन्य लोग भी उसका आनन्द लेंगे। निर्गुण-निराकार को सगुण-साकार बनाने की जरूरत क्यों पड़ी?

जब संसार में तारकासुर का राज्य हुआ, तो उस समय सारे देवता बड़े संकट में पड़ गए, क्योंकि वे तारकासुर को हराने में समर्थ नहीं थे और शंकरजी? वहाँ आता है –

संकर सहज सरूपु सम्हारा ।
लागि समाधि अखंड अपारा ।। १/५७/८

शंकरजी अपने सहज 'स्वरूप' में स्थित हैं, वह अखण्ड समाधि उनके जीवन में दिखाई दे रही है। अब उस स्थिति का परिणाम क्या हुआ? उस स्थिति में पहुँचकर बाहर तो दिखाई नहीं देता। बाहर जब तक दिखाई दे रहा है, तब तक व्यक्ति अन्तर्हृदय में, समाधि में नहीं जा सकता। और उसका लाभ कौन ले रहा है? – तारकासुर। भगवान शंकर की इस सहज समाधि – अपने आप में, स्वरूप में स्थिति का लाभ – दिव्य आनन्द की अनुभूति शंकरजी भले ही ले रहे हों, पर तारकासुर तो अत्यन्त प्रसन्न हो रहा है। इसलिए हो रहा है कि शकरजी भीतर देख रहे हैं। और बाहर?

अब जो वर्णन में आता है कि किस तरह भगवान शंकर से विवाह का अनुरोध हुआ। अन्त में सारे देवता शंकरजी के पास गए। शंकरजी ने मुस्कुरा कर पूछा – आप लोगों ने कैसे कष्ट किया? भगवान विष्णु हैं, ब्रह्माजी हैं और सारे देवता भी हैं। देवताओं ने कहा – महाराज, आज हम सभी आपसे एक विनती करने आए हैं। – क्या? बोले – आप विवाह कोजिए। अब विवाह तो बहिरंग व्यवहार है, पत्नी तो बाहर है। इसी कारण संस्कृत साहित्य में शंकरजी से बड़े बड़े विनोद किए गए हैं। कहा गया है – महाराज, आप आँख मूँदे रहते हैं, बाहर देखते नहीं, परिवार कितना बड़ा हो गया है। एक बेटा तो छह मुखवाला है और दूसरा हाथी के मुखवाला। और नहीं तो खेती ही शुरू कीजिए। कहा गया है – बलरामजी से हल और यमराज से भैसा माँग लीजिए। खेती करने में व्यंग्य यह है कि शंकरजी तो बहिरंग स्थिति में रहते ही नहीं। और इसीलिए सप्तर्षियों ने पार्वतीजी से कहा – "तुम ऐसे व्यक्ति से विवाह करना चाहती हो, जो सोता ही रहता है। क्या तुम नहीं जानती कि सती की मृत्यु का कारण भी वही है। सती की मृत्यु से उन्हें दु:ख थोड़े ही हुआ! समाचार मिला कि सती मर गई, तो अब शंकरजी बड़े आनन्द से सो रहे हैं।" ये सब साहित्य में दर्शन की भाषा है। पत्नी जागती है, कहती है, सोते ही रहोगे क्या, कुछ करोगे भी? पति के सो जाने पर पत्नी उसे जगाती है। इस पर सप्तर्षि कहते हैं कि जागना तो उसे स्वयं प्रिय नहीं लगता, जिसे नींद प्रिय है। ऐसी स्थिति में शंकरजी जब सोये और सुना की सती ने शरीर विसर्जित कर

दिया है, तो सोचा – चलो, नींद पूरी कर लेने का अब बड़ा अच्छा मौका आ गया है, अब बाहर का कोई झंझट नहीं है। भोजन के लिए क्या करते हैं? बोले – भीख माँग लेते हैं। लाओ दे दो, भोजन बनाओ तुम, भोजन कर लेंगे हम ! तब व्यंग्य में सप्तर्षि कहते हैं – जिसको अकेलापन ही अच्छा लगता है, ऐसे व्यक्ति से विवाह करोगी क्या? –

अब सुख सोवत सोचु नहिं
भीख मागि भव खाहिं।
सहज एकाकिन्ह के भवन
कबहुँ कि नारि खटाहिं ।। १/७९

यहाँ संकेत यह था कि जो 'स्वरूप'-सुख में डूबा हुआ है, विवाह माने सुख का बहिरंग रूप, बहिरंग व्यवहार का आधार है। पर जो स्वरूप में डूब गया उसे इसकी अपेक्षा नहीं रह गई। पर लोकहितार्थ जब वह बाहर निकलेगा, तभी तो लोगों की समस्या का समाधान होगा। इसलिए मानो विवाह करने का अर्थ; आपने ध्यान दिया? ये दो शब्द बड़े महत्व के हैं – सहज और सरल। ज्ञान का प्राण है सहज और भक्ति का प्राण है सरल। भगवान को प्रिय क्या है? भगवान कहते हैं –

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा ।। ५/४३/५

श्रीराम के लिए बारम्बार कहा गया –'सहज-सरल'। **श्रीराम बड़े सरल हैं और सरल लोग ही उन्हें बड़े प्रिय भी हैं।** भक्ति में 'सरल' शब्द को महत्व दिया गया और ज्ञान का आधार 'सहज' है। **स्वरूप तो सहज स्थिति का ही नाम है। वैराग्य भी सहज है।** पर क्या आपने इनकी शब्द-रचना पर ध्यान दिया? सहज और सरल – इनमें मात्रा का अभाव है।

शब्द में दो उपादान होते है – स्वर और व्यञ्जन। क् ख् ग् घ् – ये व्यंजन हैं और इनको जब आप शब्द बनाना चाहते हैं, तो उनके साथ अ, आ, इ, ई आदि स्वर की मात्रा लगाते हैं। स्वर और व्यंजन का मिलन ही शब्द है। बिना दोनों को मिलाए शब्द नहीं बनते। दोनों न मिलते, तो न शब्द बनते और न ज्ञानपूर्ण ग्रन्थ। पर 'सहज' और 'सरल' शब्दों में कोई मात्रा नहीं हैं। सहज होना अच्छा है, पर सहज बनने की चेष्टा मत कीजिएगा, क्योंकि यदि आप कुछ बनने की चेष्टा करेंगे, तो वह सहज कहाँ रह गया। इसी प्रकार **स्वर ब्रह्म है और व्यंजन माया। जब दोनों का मिलन होता है, तब संसार बनता है।** श्रीकृष्ण कहते हैं – अक्षरों में अकार मैं ही हूँ।

अत: ब्रह्म सहज-सरल है। श्रीराम ने पुष्प-वाटिका में जब सीताजी की सुन्दरता को देखा और पुष्प-वाटिका से लौटे, तो देर हो गयी थी। श्रीराम ने गुरुदेव के पास जाकर सारी बातें कह दी – पुष्प-वाटिका में सीताजी से कैसे साक्षात्कार हुआ, उनकी कैसी सुन्दरता है, आदि आदि। अब ये भी क्या गुरु से कहने की बातें होती हैं? पर यह उनकी सरलता है –

राम कहा सबु कौसिक पाहीं।
सरल सुभाउ छुवत छल नाहीं ।। १/२३७/२

श्रीराम इतने सरल हैं ! भगवान राम की सरलता ब्रह्म की सरलता है। श्रीराम ने सीताजी को देखा, तो लक्ष्मणजी को अपने मन की भावना बता दी। छोटे भाई से भी कभी ऐसी बात नही कही जाती और गुरु से भी, परन्तु उन्होंने दोनो से कह दिया, क्योंकि सरल हैं, कुछ छिपा ही नहीं सकते।

पर सीताजी को सरल नही कहा गया। वे तो इतना अधिक छिपाती हैं कि पूरे पुष्प-वाटिका प्रसंग मे इसी का वर्णन है। वहाँ है – दो राजकुमार आए हुए हैं। सखियों ने कहा कि दर्शन करना चाहिए। सीताजी ने सखी से कहा – तुम देखकर आयी हो, आगे आगे चलो। –

चली अग्र करि प्रिय सखि सोई।
प्रीति पुरातन लखइ न कोई ।। १/२२८/८

अब क्या महाशक्ति सीताजी को भी कोई मार्ग दिखानेवाला चाहिए? सीताजी ने सोचा यदि मैं स्वयं वहाँ पहुँच गयी, तो ये पूछेंगी कि पहले से कोई योजना थी क्या? आपको पता था क्या कि वे कहाँ हैं, कहाँ मिलेंगे? इसलिए सखी से कहा – मुझे तो पता नहीं वे कहाँ हैं, तुम देखकर आई हो, आगे आगे चलकर राह बताओ। सीताजी ने श्रीराम से अपना अनादि अनन्त सम्बन्ध मानो छिपा लिया और प्रगट यह किया कि मैं तो नहीं जानती, सखी जो बता रही है, उसी का मै अनुगमन कर रही हूँ। यहाँ तक कि सखी जब वहाँ ले गई, जहाँ उसने श्रीराम को देखा था और वहाँ पहुँचने पर जब वे दिखाई नहीं दिए, तो सीताजी व्याकुल हो गई –

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता।
कहँ गए नृपकिसोर मनु चिंता ।।
जहँ बिलोक मृगसावक नैनी।
जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी ।। १/२३१/१-२

जब सीताजी श्रीराम को खोज नहीं पाई, तब सखियो ने कहा – देखिए, उस लता की ओट में –

लता ओट तब सखिन्ह लखाए।
स्यामल गौर किसोर सुहाए ।। १/२३१/३

नई बात हो गयी। जिनकी कृपा से भक्तों को भगवान का दर्शन होता है, उनको जब सखियों ने दिखाया, तब कहीं श्रीराम दिखाई पड़े। किन्तु दिखाई देने पर भी सीताजी छिपाने की कला में कितनी निपुण हैं? सखियाँ देख रही हैं, पर सीताजी क्या कर रही हैं – वे नेत्रमार्ग से श्रीराम को हृदय में ले आई और कपाट अर्थात् पलकों को बन्द कर लिया –

लोचन मग रामहि उर आनी।
दीन्हें पलक कपाट सयानी ।। १/२३१/८

क्यों? वहाँ पर शब्द क्या है? – सयानी। श्रीराम जितने सहज और सरल है, सीताजी उतनी सहज सरल नही है। वे

सखियों से भी छिपाती हैं। जब वे घर लौट रही हैं तो सखियों से यह नहीं कहती कि श्रीराम का दर्शन करना है –

देखन मिस मृग बिहग तरु
फिरइ बहोरि बहोरि ।
निरखि निरखि रघुबीर छबि
बाढ़इ प्रीति न थोरि ।। १/२३४

इसका उल्टा अर्थ मत ले लीजिएगा। किसी पत्रकार ने मेरे प्रवचन में सुना कि लक्ष्मण सरल नहीं थे और इसका उल्टा अर्थ लेकर समाचार-पत्र में लिख दिया कि लक्ष्मण कुटिल थे। इसलिए थोड़ा सजग रहकर सुनना चाहिए।

श्रीराम सरल हैं और सीताजी सयानी हैं। ब्रह्म सरल है और प्रकृति या माया सयानी है। दोनों मिलें तो संसार बने। स्वर तथा व्यंजन मिलें तो शब्द बनें। पूरे संसार का व्यवहार दोनों के मिलन में ही सम्भव है। अत: जब मनुजी ने कहा – दर्शन दीजिए, तो भगवान ने दर्शन तो दिया, पर जब वे प्रगट हुए तो देखकर मनु को आश्चर्य हुआ। मनु ने कहा – मैंने तो एक रूप बताया था, ये दूसरी कौन हैं? वाम भाग में सीताजी खड़ी थीं। भगवान ने कहा – ये मेरी शक्ति हैं, जिन्होंने संसार को उत्पन्न किया है, ये भी मेरे साथ अवतरित होंगी –

आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया ।
सोउ अवतरिहि मोरि यह माया ।। १/१५१/४

– क्यों? बोले – लीला जब भी होगी, तो इन्हीं के द्वारा होगी। वह इनका खेल है। जादूगर के बिना जादू का खेल थोड़े ही हो सकता है। मायानाथ स्वयं माया के बिना संसार को नहीं बना सकते। मैं आऊँगा, तो साथ में ये भी आयेंगी –

लखा न मरमु रामु बिनु काहूँ ।
माया सब सिय माया माहूँ ।। २/२५१/३

सीताजी मायाओं की भी परम अधीश्वरी है। सब देवताओं के पास शक्ति है, सब राक्षसों के पास शक्ति है, पर सीताजी कौन हैं? वे सब मायाओं की अधीश्वरी हैं। भगवान श्रीराम और सीताजी का मिलन इस विश्व की रचना है। विनोद में प्रभु ने मनु से पूछ लिया – तुम क्या चाहते हो? तो उनका उत्तर था – महाराज, मैं आपके समान पुत्र चाहता हूँ। भगवान बोले – अब मैं अपने जैसा खोजने कहाँ जाऊँ, इससे अच्छा तो यही होगा कि मैं स्वयं ही तुम्हारा पुत्र बनकर आऊँगा –

आपु सरिस खोजौं कहँ जाई ।
नृप तव तनय होब मैं आई ।। १/१४९/२

विनोद क्या था? बोले – मैं समझ गया। आपकी इच्छा तो बढ़ती ही जाएगी। अभी तो आप ही कह रहे हैं कि आपके समान पुत्र चाहिए। अब लगने लगा कि आपके समान नहीं, आप ही पुत्र बन जाइए और जब मै अवतार लूँगा बालक के रूप मे, फिर धीरे धीरे बड़ा हो जाऊँगा, तब आपको यह भी चिन्ता होगी कि मै अपने पुत्र का विवाह किस कन्या से करूँ? मेरे योग्य कन्या खोजोगे, तो वह आपको संसार में मिलेगी नही, अत: मैं उन्हे भी साथ ही ला रहा हूँ। आपको खोजना नही होगा। आप तो बस उस विवाह का आनन्द लेना।

विवाह अर्थात् ब्रह्म और शक्ति का मिलन। सरल और सयानी का मिलन। उस मिलन में जितनी लीला सम्पन्न होती है, उसमें सीताजी अन्तर में छिपी हुई हैं। अपनी शक्ति के द्वारा सबको संचालित कर रही हैं। यह जो लीला दिखाई देती है, यह भी माया का खेल है। जब तक वे न चाहें तब तक दिखाई नहीं देतीं। जो दिखाई देता है वह तो उन्हीं की कृपा है। इसलिए जनकपुर में जब बाराती आए तो सीताजी को लगा कि कहीं अयोध्यावासी यह न सोच लें कि महाराज दशरथ के वैभव की तुलना में जनक का वैभव कम है, जनक छोटे राजा है। इसलिए सीताजी ने सारी सिद्धियो को बुलाया और कहा – आप लोग जनवास में बारात का स्वागत करे –

जानी सियँ बरात पुर आई ।
कछु निज महिमा प्रगटि जनाई ।।
हृदयँ सुमिरि सब सिद्धि बोलाईं ।
भूप पहुनई करन पठाईं ।। १/३०५/७-८

दिव्य चमत्कार हुआ, लेकिन किसी को भी पता नहीं चला कि इसमें सीताजी की शक्ति है –

सिधि सब सिय आयसु
अकनि गईं जहाँ जनवास ।
लिएँ संपदा सकल सुख
सुरपुर भोग बिलास ।। १/३०६

वह दृश्य देख अयोध्यावासी सोचने लगे – हम तो अपने महाराज को ही बड़ा समझते थे, पर यहाँ तो लगता है कि हमारे महाराज कुछ भी नहीं हैं। इस प्रकार लीला का, निर्गुण और सगुण का, सहज और चतुर का अनोखा क्रम चलता है।

जैसे स्वर और व्यंजन के मिलन से शब्द और साहित्य की सृष्टि होती है, वैसे ही ब्रह्म जब तक शक्ति का आश्रय न ले, तब तक न तो सृजन होगा और न संसार का निर्माण होगा। इस सन्दर्भ मे भगवान जानते थे कि जनक स्वयं भले ही ज्ञानी हो गए हों, ज्ञान से भले ही आनन्द पा लिया हो, पर उनकी दृष्टि में एक अधूरापन है और प्रभु ने विनोदपूर्वक उसे दूर कर दिया। वे धनुष तोड़ने के लिए पहले क्यों नही उठे? बोले – बड़ा दावा कर रहे थे न कि हम सहज विरागी हैं, जरा देखें, कितना वैराग्य है? और जब वे रोने लगे कि हाय, मेरी बेटी का विवाह कैसे होगा! तो बोले – क्या यही वैराग्य है? अभी तक तो कह रहे थे – मेरा मन सहज वैराग्य-रूप है और अब आप रो रहे है कि मेरी बेटी तो कुँवारी ही रह जायेगी –

कुअँरि कुआरि रहउ का करऊँ ।। १/२५२/५

राजा जनक को इस तरह की व्याकुलता होने पर लक्ष्मणजी ने उन्हे फटकारा। बोले – थोड़ी परीक्षा ब्रह्म ने ले ली, तो

रोने लगे ! तब जनकजी को लगा कि अन्य वैराग्य की बात तो जाने दें, सहज वैराग्य का भी अभिमान नहीं होना चाहिए, उसको भी नष्ट करने के बाद तब कहीं धनुष टूटा।

इस अनोखे प्रसंग में 'रूप' है, और 'स्वरूप' भी। इसमें महाराज जनक जैसे तत्त्वज्ञ हैं, तो महाराज दशरथ जैसे भावुक भी हैं। पत्र लेकर दूत के अयोध्या पहुँचने पर महाराज दशरथ ने जो प्रश्न किया, वह भक्तिशास्त्र की पद्धति है। उन्होंने पूछा – क्या तुमने हमारे पुत्रों को भी देखा है या केवल पत्र लेकर चले आए? डाकिया जब आपका पत्र लेकर आता है तो वह पत्र-भेजनेवाले से लेकर थोड़े ही आता है ! वह तो डाकघर से पत्र लाता है। महाराज दशरथ ने पूछा – क्या तुमने हमारे पुत्रों को देखा? दूत चुप रहे, मानो अब भी सन्देह हो कि हमने देखा या नहीं। पर इसके बाद दूसरा प्रश्न सुनकर और चकित रह गए। प्रश्न हुआ – यदि तुमने देखा, तो अपनी आँखों से देखा या नहीं? अरे भाई, यदि कोई देखेगा, तो अपनी आँखों से ही तो देखेगा। पर ऐसा बिल्कुल नही है। आप अपनी आँख से बिल्कुल नहीं देखते' आज कुछ पत्रकार आए थे। वे मुझसे प्रश्न करने लगे – लोग क्या कहते होंगे? मैंने कहा – "लोग वही कहते हैं जो आप उनके दिमाग में भर देते हैं। वे स्वयं थोड़े ही सोचते हैं। आप ही उनके मन में समाचार-पत्रों या दूरदर्शन के माध्यम से बैठा देते हैं। आप जिसको देखते हैं, यह देखना है क्या? और देखने के बाद अपनी आँख से देखना है क्या?" फिर भी दूत चुप रहे। – महाराज, और कुछ बाकी हो तो पूछ लीजिए। महाराज दशरथ ने पूछा – क्या तुमने मेरे पुत्रों को अपनी आँखों से भली प्रकार से देखा?

वह प्रश्न-उत्तर बड़ा लम्बा है और इसका अभिप्राय बड़ा मधुर है। यहाँ जनकजी के सन्दर्भ में भी एक व्यंग्यात्मक प्रश्न था – "जिनकी आप लोग इतनी प्रशंसा कर रहे हैं और जिनके आप दूत हैं उनके ज्ञान की बड़ी प्रशंसा है। मैंने तो सुना है कि उनका नाम विदेह है। ऐसी स्थिति में विदेह ने देह को कैसे देख लिया?" मानो ज्ञान और भक्ति के बीच संवाद हो रहा है। वे दूत भी कोई साधारण तो थे नहीं। उत्तर देने की कला तो कोई उनसे सीखे। जब उनसे पूछा गया – हमारे पुत्रों को विदेहराज ने किस प्रकार जाना –

कहहु बिदेह कवन बिधि जाने। १/२९०/८

दूतों ने मुस्कुराकर कहा – आपके पुत्रों को तो विदेह ही जान सकते हैं, देहवाले क्या जानेंगे, क्योंकि देहवाले तो यह मान लेंगे कि जैसे हम देहवाले हैं, वैसे ही ये दोनों भी देहवाले हैं। दूसरा प्रश्न जो आपने पूछा कि 'आपके पुत्रों को विदेह ने कैसे पहचाना' – तो अँधेरे में यदि कोई वस्तु ढूँढ़नी हो, तब तो दीपक की आवश्यकता होती है, परन्तु सूरज निकल आने पर क्या कोई यह कहता है कि जरा दीपक लेकर देखो तो सूर्य निकल आया या नहीं? उल्टे सबसे पहले तो वह यही कहेगा कि सूर्य निकल आया, दीपक बुझा दो। इसीलिए शंकरजी को देखकर जब मैना ने आरती की थाल पटक दी, दीपक बुझ गया, तो शंकरजी ने कहा – "अनजाने मे सही, उसने मुझे ठीक ठीक पहचान लिया। मेरे आते ही दिये को पटक दिया। माने सूर्य निकल आया, अब दिये की क्या जरूरत?"

दीपक बुद्धि-वृत्ति है। बुद्धि-वृत्ति के प्रकाश में हम जो भी देखते हैं और जब ब्रह्म की साक्षात् अनुभूति हो जाती है, तब बुद्धि समाप्त हो जाती है, विलीन हो जाती है। इसलिए दूतों ने कहा – आपने जो पूछा, उसका उत्तर है –

देखिअ रबि कि दीप कर लीन्हे ।। १/२९२/३

इस प्रसंग की भूमिका के रूप में कुछ प्रश्न संकेत के रूप में रखे गए हैं। इसमें दोनों आनन्द हैं। धनुषयज्ञ मे भक्ति का, सगुण-साकार का भी रस है और निर्गुण-निराकार के तत्त्वज्ञान का भी स्वरूप है। यह जो धनुर्भंग है, इसमें एक धनुष को तोड़ना मात्र ही नहीं है। राक्षसों के वध में भगवान भले ही हर्षित हों, पर यह कार्य ऐसा था जिसमें वे जीव भाव में स्थित होकर धनुष नहीं तोड़ते। हर्ष एवं विषाद जीव का लक्षण है –

हरष बिषाद ग्यान अग्याना।
जीव धर्म अहमिति अभिमाना ।। १/११५/७

भगवान राम जब हर्ष-विषाद से रहित होकर, गुरुदेव की आज्ञा से उठते हैं तो सहज भाव से उठते हैं। सहज ब्रह्म, सयानी सीता और उन दोनों के अन्तराल मे जो लीला हो रही है, वह लीला हर दृष्टि से आनन्दमयी है, कल्याणमयी है। वह व्यवहार-शास्त्री के लिए व्यवहार-शास्त्र है और जो भक्तिरस को पाना चाहते हैं, उनके लिए भक्तिरस की पराकाष्ठा है। जो लोग श्रीराम को तत्त्वत: जानना चाहते हैं, वे उनके तात्त्विक स्वरूप को जान सकते हैं।

❖ (क्रमशः) ❖

पुरखों की थाती

कौमारे आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतान् इह।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदपि अध्रुवम्-अर्थदम् ।।

– इस संसार में मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है और मृत्यु कभी भी आ सकती है, अत: बुद्धिमान को चाहिए कि तरुणाई से ही भगवत्-प्राप्ति के साधन में लग जाय।

जीने की कला (२८)

स्वामी जगदात्मानन्द

(लेखक रामकृष्ण संघ के एक वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने युवकों के लिए जीवन-निर्माण में मार्गदर्शन करने हेतु कन्नड़ भाषा में एक पुस्तक लिखी, जो अतीव लोकप्रिय हुई। इसका अंग्रेजी अनुवाद भी दो भागों में निकला है। इसकी उपयोगिता को देखकर हम इसका धारावाहिक प्रकाशन कर रहे हैं। अनुवादक है श्री रामकुमार गौड़, जो सम्प्रति आकाशवाणी के वाराणसी केन्द्र में सेवारत हैं। – सं.)

क्या हमारे दो शरीर होते हैं?

रूसी विशेषज्ञ १९३९ ई. मे ही इस बात से आश्वस्त हो गए थे कि अस्थि-मांस-रक्त आदि से निर्मित बाह्य भौतिक देह की पृष्ठभूमि में एक अन्य सूक्ष्म देह भी विद्यमान है और प्राचीन काल से ही महात्मागण उसका साक्षात्कार करते आये हैं। तब दक्षिणी रूस के क्यूबन प्रान्त के क्रेस्नोडर में पहले से ही इस पर शोध आरम्भ हो गया था। वैज्ञानिकगण एक ऐसे विशेषज्ञ की तलाश कर रहे थे, जो स्थूल भौतिक देह के भीतर स्थित सूक्ष्म शरीर को पहचाननेवाली कुछ मशीनों का निर्माण कर सके। सैम्यान डेविडोविच किर्लियन, यद्यपि कोई विख्यात वैज्ञानिक न था, तथापि वह एक तकनीकी विशेषज्ञ के रूप में इस टोली में शामिल हो गया। वह एक प्रतिभावान, साहसी तथा परिश्रमी युवक था, जो एक सुप्रशिक्षित तकनीशियन भी था। वह विद्युत-उपकरणों की मरम्मत तथा उनकी प्रणाली में सुधार करने में भी सक्षम था। उसकी पत्नी वैलेंटाइन एक पत्रकार तथा अध्यापिका थी। किर्लियन-दम्पत्ति ने पहले ही वनस्पतियों के जीवन के गहन निरीक्षण के लिए एक नया सूक्ष्मदर्शी यंत्र बना लिया था। और अब किर्लियन ने एक ऐसे उपकरण का आविष्कार किया, जिसमें एक शक्तिशाली इलेक्ट्रानिक सूक्ष्मदर्शी यंत्र था और इसी से वह अमर हो गया। जब उसने उच्च फ्रीक्वेंसी की विद्युत्-धारा के पास फोटोग्राफिक कागज को अपने हाथ से थपथपाया, तो उसे उस पर अस्पष्ट चिह्न और रेखाएँ मिलीं। इसी से वह एक परिष्कृत यंत्र की खोज के कार्य में अग्रसर हुआ और एक महान् आविष्कारक बना।

साधारण मनुष्य की भाषा में कथित निम्नलिखित उदाहरण से इस तथ्य को समझने में मदद मिल सकती है। प्रत्येक व्यक्ति को यह ज्ञात है कि चुम्बक एक निश्चित दूरी के भीतर के लौहकणों को आकर्षित किया करता है। इस चुम्बकीय क्षेत्र की तुलना एक जीवित व्यक्ति के शरीर से नि:सृत विकीरण-क्षेत्र से की जा सकती है। जब चुम्बक लौहकणों को अपनी ओर खीचता है, तो हम उसकी शक्ति के अस्तित्व से अवगत हो जाते हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि मानव-देह से विकिरित होनेवाली ऊर्जा विद्युत्-धारा को भी प्रभावित कर सकती है। मानव-शरीर के चतुर्दिक स्थित विकिरण या आभा-मण्डल का चित्र लेने में सक्षम होने के लिए शरीर या किसी अंग को उच्च फ्रिक्वेंसी की विद्युत्-धारा के क्षेत्र में पास रखा जाना चाहिए। देह से विकिरित होनेवाली ऊर्जा विद्युतीय क्षेत्र पर इसके प्रभाव को दर्शाती है और आभा-मण्डल के रंग में परिवर्तन को पकड़ लेती है। यह किर्लियन यंत्र दृश्यमान बनाने के लिए किसी गैर-विद्युतीय पदार्थ को मानो विद्युतीय पदार्थ में बदल देता है।

सोवियत वैज्ञानिको ने किर्लियन यंत्रो की सहायता से जाना कि स्थूल शरीर सूक्ष्म-शरीर को ढँके रहता है। स्थूल शरीर को आलोकित रखनेवाला यह सूक्ष्म शरीर ही है। यह मानो वैसा ही जैसे कि सूर्यग्रहण के समय चन्द्रमा सूर्य को ढँके रहता है। पौधे, जन्तु तथा मनुष्य – प्रत्येक जीवधारी के न केवल अणु-परमाणुओं से बना एक स्थूल भौतिक शरीर होता है, वरन् ऊर्जा से बना हुआ उसके एक प्रतिरूप शरीर भी होता है। वैज्ञानिको ने इसे 'जैविक प्लज्मा शरीर' कहा है। विभिन्न देशों के अतीन्द्रिय अनुभव-सम्पन्न लोगों ने इसका विभिन्न नामों से उल्लेख किया है, यथा – ऊर्जा शरीर, गौण शरीर, वायवीय शरीर, तरल शरीर, प्रतिरूप शरीर, पूर्वभौतिक शरीर आदि।

इस सूक्ष्म शरीर या ऊर्जा शरीर को किर्लियन यंत्र से देखनेवाले लोग केवल अतीन्द्रिय विषयों के जिज्ञासु साधारण मानव नहीं थे। वे लोग सोवियत संघ के विज्ञान अकादमी की प्रधान परिषद, अन्य प्रयोगशालाओं के वरिष्ठ वैज्ञानिक तथा विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक लोग थे। सूक्ष्म-निरीक्षण के बाद उन्होंने निम्नलिखित बातें कही –

"अकल्पनीय! उसी विद्युत्-धारा की तरंगे विभिन्न रंगों मे प्रकाशित होती है। उस ज्योति का अग्रभाग नील तथा नारंगी रंग का चमकता है। ज्योति के कुछ भाग निरन्तर चमकते रहते हैं, जबकि कुछ भाग तारो के समान रुक रुककर चमकते हैं। सचमुच ही, यह एक आश्चर्यजनक, कौतुकपूर्ण, रहस्यमय और ज्योतिर्मय जगत् हैं!"

इस यंत्र की सहायता से सूक्ष्म शरीर से नि:सृत होनेवाली ज्योति के विभिन्न रंगो का अध्ययन किया गया था। व्यक्ति के भावुक हो जाने पर इस ज्योति के रंगो मे परिवर्तन दीख पड़ा। उत्तेजना के समय भी रंगों में परिवर्तन आता था। शोधकर्ताओं ने पाया कि इन रंगो के आधार पर मनुष्य के स्वास्थ्य का निर्धारण किया जा सकता था और भविष्य मे होनेवाली बीमारियो की सम्भावना के बारे मे भी भविष्यवाणी की जा सकती थी।

किर्लियन यंत्र के द्वारा दीर्घकाल तक शोध करनेवाले सोवियत विशेषज्ञो ने व्यक्ति की मृत्यु के समय सूक्ष्म शरीर में

होनेवाले परिवर्तनों के भी चित्र खींचे थे। उन्होंने पाया कि जीवों तथा वनस्पतियों की मृत्यु होने पर उनका सूक्ष्म शरीर वायु-मण्डल में लुप्त हो गया था। मृत जीवों या वनस्पतियों में इस सूक्ष्म शरीर का नामो-निशान तक न था!

संक्षेप में, निम्नलिखित बातें सत्य हैं – रूस में अतीन्द्रिय जगत् से सम्बन्धित विषयों पर विपुल शोध हुए हैं और हो रहे हैं! रूसी वैज्ञानिकों ने अतीन्द्रिय साधनों से आविष्कृत तथ्यों का उपयोग खुफिया तंत्र और सेना में करने की योजनाएँ बनाई हैं। कहते हैं कि रूसी लोगों ने असामाजिक गतिविधियों में लिप्त लोगों के सुधारने में भी इस दूरबोध-प्रणाली (टेलीपैथी) की शुरुआत की है। अति उच्चपदस्थ वैज्ञानिक अब अतीन्द्रिय अनुभूतियों पर वक्र दृष्टि नहीं रखते। रूसी वैज्ञानिकों ने संसार के किसी भी कोने में घटित होनेवाली रहस्यमय घटनाओं या अतीन्द्रिय अनुभूतियों के क्षेत्र से जुड़ी सभी उपलब्ध विवरणों को एकत्र करने की एक तरकीब ढूँढ़ निकाली है।

रूस के लोग इन्द्रियातीत अनुभूति-सम्पन्न लोगों तथा इस विषय के शोधकर्ताओं की जानकारी रखते हैं। वे दूरबोध के सभी ज्ञाताओं, भविष्यज्ञों, विश्वास-चिकित्सकों तथा आध्यात्मिक आचार्यों के पास जाकर उनकी प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करने की चेष्टा करते हैं। डॉ. लोजानोब ने इस क्षेत्र में बीस वर्षों तक शोध किया और अनेक वर्षों तक भारतीय योगशास्त्र का भी अध्ययन किया।

भारत में यह उपेक्षा क्यों?

वैज्ञानिक दृष्टि से उन्नत देशों में मानव-मन के अवचेतन स्तरों के गहन अध्ययनों के प्रामाणिक विवरणों से यदि हम परिचित हो जायँ, तो इससे हमें पुनर्जन्म के बारे में परम्परागत भारतीय दृष्टिकोण को समझने में मदद मिलेगी। आज भारत के पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त अधिकांश छात्र तथा बुद्धिजीवी इन विचारों को पुराना, युक्तिहीन या अवैज्ञानिक मानते हैं। शायद मात्र मुट्ठी भर लोगों ने ही इस विषय का विधिवत् अध्ययन करके अपने विश्वासों को सुदृढ़ बनाया है। आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान के आलोक में हमारे प्राचीन विचारों की महानता और महत्ता को समझने का समर्पित प्रयत्न पूर्णत: लुप्तप्राय हो चुका है। यद्यपि भारतीय वैज्ञानिकों ने आधुनिक भौतिक विज्ञानों के प्रचार-प्रसार में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी है, तथापि वे मन तथा आत्मा-सम्बन्धी विषयों पर चिन्तन करने में असम्मान का बोध करते हैं। भारतीय वैज्ञानिक, प्राप्त होनेवाली सभी अतीन्द्रिय अनुभूतियों को काल्पनिक, अप्रासंगिक और अन्धविश्वास मानकर उसे अस्वीकार करने पर तुले हैं। भारतीय स्वाधीनता के लिए संघर्ष करनेवाले राष्ट्रवादी लोगों और जनता ने सामान्यतया इस भारतभूमि के सदियों पुराने धर्म तथा संस्कृति का आदर किया है। उनका दृढ़ विश्वास था कि भारत निश्चित रूप से विश्व-संस्कृति को सार्थक रूप से प्रभावित करेगा। वे इस बात से आश्वस्त थे कि प्राचीन भारतीय शास्त्रों में आधुनिक विज्ञान द्वारा उद्भूत चुनौतियों का मुकाबले की सामर्थ्य विद्यमान है।

परन्तु परवर्ती पीढ़ियों ने खेदजनक ढंग से इन धार्मिक और दार्शनिक आदर्शों की उपेक्षा की। पाश्चात्य लोग भारतीय योगशास्त्र, दर्शन, संगीत और कला की ओर क्यों आकृष्ट हो रहे हैं? निश्चय ही केवल जिज्ञासा या उत्तेजना के लिए नही होते। इस देश के प्राचीन ऋषियो ने मानव-मन की गहराइयों में उतर कर जीवन के अभिप्राय को ढूढ़ निकाला है। उन्होंने समाज को जीवन के शाश्वत मूल्य प्रदान किए। विज्ञान के क्षेत्र में उन्नति कर रहे देशों में मानव मन की गहराइयों में छिपे रहस्यों की छानबीन करने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। मन के विषय और इसकी कार्यप्रणाली से परिचित लोग स्वाभाविक तौर पर मानव मन के बारे में भारतीय दृष्टिकोण को अधिकाधिक जानना चाहेंगे। राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए जीने और मरने वाले स्वप्न-द्रष्टाओं और नेताओं का विश्वास था कि हमें अपनी संस्कृति को विस्मृत करके अपने ही देश में विदेशी बनकर नहीं रहना चाहिए। दीर्घकालिक औपनिवेशिक दासता, अज्ञानता, हीन-भावना और अनुकरणशीलता के कारण भारतीय लोग अपनी संस्कृति और परम्परा के प्रति शर्मिन्दा होते रहे हैं। इसलिए मैंने मन के स्वरूप के विषय में भारतीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के पूर्व पाश्चात्य देशों में उपलब्ध प्रामाणिक साक्ष्य प्रस्तुत किये है।

विस्मृत सत्य

मानवीय इतिहास के प्रारम्भ से ही लोग ऐसे चमत्कारों, अनुभवों और घटनाओं में विश्वास करते रहे हैं, जिनकी व्याख्या वे अपनी तर्कबुद्धि से नहीं कर सकते थे। भारत में योग और ध्यान की सहायता से ऐसी घटनाओं की संकल्पना

की गई थी। इन अनुसन्धानों ने परवर्ती शताब्दियों में ईश्वर, आत्मा, पुनर्जन्म, कर्म और धर्म (नीतिशास्त्र) के बारे में दृढ़ धारणाओं को जन्म दिया। विज्ञान की चकाचौंध भरी खोजों के इस युग में भी ऐसी असाधारण घटनाओं के बारे में भी यदा-कदा भरोसेमन्द सूचनाएँ मिलती रही हैं। कभी कभी ऐसी सूचनाएँ मनगढ़न्त भी हो सकती हैं, तथापि वे सत्य की सम्भावित अभिव्यक्ति की ओर संकेत करती हैं। सामान्यतया, वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने का दावा करनेवाले लोग अतीन्द्रिय तथ्यों की ऐसी अभिव्यक्ति को तुच्छ मानते रहे हैं। इसका कारण यह है कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण मानव की पाँच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ही प्रकृति और ब्रह्माण्ड के तथ्यों के अनुभव और बोध का प्रयत्न करता है। परन्तु अतीन्द्रिय तथ्य या चमत्कार कही जानेवाली घटनाएँ ऐसी वैज्ञानिक छानबीन की परिधि मे नही आतीं, क्योंकि वे पंच ज्ञानेन्द्रियों की सीमा से परे घटित होती हैं। यद्यपि आधुनिक विज्ञान के लिए भी अबोधगम्य कई तथ्य हैं, परन्तु वैज्ञानिक उनके परीक्षण की आकांक्षा नहीं रखते। कुछ लोगों ने भले ही संयोगवश इन तथ्यों का निरीक्षण और अनुभव प्राप्त कर लिया है और वे उन तथ्यों की सच्चाई के बारे में भले ही आश्वस्त हों, पर वे इस विषय पर अपने विचार व्यक्त करने में संकोच कर सकते हैं, क्योंकि इन घटनाओं की प्राय: खिल्ली उड़ायी जाती है। वे प्राय: अन्धविश्वासी वैज्ञानिकों के रूप में हेय और तुच्छ समझे जाने के भय से भयभीत रहते हैं। यद्यपि शोधकर्ता और वैज्ञानिकगण इन अलौकिक घटनाओं का पता लगाने मे सफल हो सकते है, परन्तु वे जनता द्वारा इन व्याख्याओं के विरुद्ध दीर्घकाल से व्यक्त पूर्वाग्रह और घृणा को समाप्त करने में समर्थ नहीं हो पाते। यदि ये शोधकर्तागण अपनी खोजों को प्रकाशित भी करें, तो उनके विचार विरोधियों के कोलाहलपूर्ण विरोधों के सम्मुख अरण्य-रोदन मात्र ही सिद्ध होते हैं। यहाँ तक कि धार्मिक आचार्यगण भी उनके घोषित विश्वासों के अनुरूप न होने पर ऐसी खोजों की सशक्त भर्त्सना करते हैं। राजनीतिज्ञ और अधिकार-प्राप्त लोग भी अपनी राजनीतिक विचारधाराओं या सामाजिक और आर्थिक सिद्धान्तों के साथ इन तथ्यों का संघर्ष देखकर स्वाभाविक रूप से उसकी भर्त्सना करते हैं। अत: यह सत्य बाह्य रूप से पूर्वाग्रह-ग्रस्त लोगों के विरोध के बीच दबा प्रतीत होता है, तथापि यह सदा-सर्वदा छिपा नहीं रह सकता। निष्पक्ष और आवेगहीन शोधकर्ताओं के समक्ष इस सत्य का निश्चय ही रहस्योद्घाटन होगा।

सुदूर अतीत में, जब यातायात तथा संचार के साधन बड़े सीमित थे, किसी समुदाय मे इन विचारों के फैलने तथा बद्धमूल होने मे कई शताब्दियों का समय लग जाता था। भौतिक शरीर में ही स्थित जीवात्मा के अस्तित्व के बारे में ज्ञान होने में दीर्घ काल लग गया। जब मनुष्य जीवात्मा और शरीर के बीच सम्बन्ध से अवगत हो गया, तो उसके मन में जीवात्मा के उद्भव, लक्ष्य, विकासक्रम तथा स्वरूप के बारे में प्रश्न उठने लगे। यद्यपि समय बीतने के साथ कुछ सिद्धान्तों का विकास हुआ, पर उन्हें विरोधों का सामना करना पड़ा था। मगर हमारे पूर्वजों ने चुनौती स्वीकारने में संकोच नही किया और उन्होंने संशय निवारण करके सत्य को इस ढंग से प्रस्तुत किया कि वह सार्वभौम रूप से स्वीकार्य हो सके।

यदि हम 'योग-शास्त्र' जैसी एक पुस्तक का भी अध्ययन करें, तो हम उसमें निहित विचारों, चर्चाओं, निष्कर्षों, प्रयोगों और विचारों के क्रियान्वयन से दंग रह जाते हैं। इस क्षेत्र के विशेषज्ञों ने अपने अनुभवों तथा सिद्धान्तों को भावी पीढ़ियो के लाभार्थ रख छोड़ा है। मैक्समूलर के अनुसार 'योग-शास्त्र' लगभग ६००० वर्षो का अपना इतिहास है। कतिपय अन्य स्रोतों के अनुसार वे और भी प्राचीन हैं।

कहते हैं कि बुद्धत्व प्राप्त करने के पूर्व, गौतम वनों में परिव्रजन करते समय योग में सिद्ध असंख्य तपस्वियों से मिल चुके थे। मैक्समूलर के अनुसार योगसूत्र के लेखक पतंजलि का काल द्वितीय शताब्दी ईसापूर्व था। यह ग्रन्थ अनुभूतियों के आधार पर स्पष्ट तथा युक्तिसंगत ढंग से बताता है कि मानव-मन को जब ठीक ठीक प्रशिक्षित किया जाता है, तो वह किन ऊँचाइयो तक पहुँच सकता है। हम जानते है कि ३०० वर्षो के वैज्ञानिक विकास के उपरान्त ही परमाणु हथियारों और राकेटों के युग की शुरुआत हुई। इसी प्रकार निश्चय ही काफी काल तक जिज्ञासाओं तथा शोधों के बाद ही लोगों के मन मे ईश्वर, आत्मा, पुनर्जन्म के रहस्यों तथा कर्म-सिद्धान्त के विषय में दृढ़ विश्वास सुप्रतिष्ठित हुआ होगा।

❖ (क्रमश:) ❖

चन्दरी बुआ की कहानी

रामेश्वर टाँटिया

राजस्थान में पुराने जमाने में ऐसी प्रथा थी कि एक ही गाँव में शादी-विवाह नहीं होते थे। लड़की को दूसरे गाँव में देते थे और दूसरे गाँव की लड़की को बहू बनाकर लाते। यह भी होता कि अगर किसी गाँव मे बारात आती, तो वर-पक्ष के गाँव की जितनी लड़कियाँ वहाँ ब्याही हुई होतीं, सबको मिठाइयाँ भेजी जाती थीं।

अपने गाँव की लड़की को, चाहे किसी भी जाति की हो, आयु के अनुसार भतीजी, बहन या बुआ कहकर पुकारा जाता था। मुझे याद है कि हमारे घर के पास मुसलमान लखारों का घर था और हम उन सबको चाचा, ताऊ या चाची, ताई कह कर पुकारते थे। अब गाँव, कस्बों में परिवर्तित हो गये है और यातायात के साधन सुलभ होने से आवागमन भी बढ़ गए हैं, इसलिए यह प्रथा कम होती जा रही है।

इस कथा की नायिका चन्दरी बुआ का जन्म राजस्थान की बीकानेर रियासत के एक गाँव में आज से एक सौ दस वर्ष पूर्व एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। माता-पिता की इकलौती सन्तान थी, इसलिए उसे चन्द्रावती या चन्द्रप्रभा का सुन्दर-सा नाम दिया गया, परन्तु लोग उसे चन्दरी या चाँदी के नाम से पुकारते थे। उन दिनों पण्डित को सुहासिनी, शेफाली, सरिता और सुनयना आदि नामों की जानकारी ही नहीं थी।

जब चन्दरी बारह वर्ष की हुई, तो उसका विवाह हुआ। पास के गाँव से बारात आई और सारी रीतियाँ धूमधाम से सम्पन्न हुईं। उसके पिता तो साधारण स्थिति के ब्राह्मण थे, परन्तु उन दिनों विवाह-शादियों में घरवालों को कुछ नहीं करना पड़ता था। गाँव के स्त्री-पुरुष और बच्चे सारे विशेष कामों का आपस में बँटवारा कर लेते थे। प्रति घर से एक-दो रुपये 'टाँके' या 'बान' के रूप में भी दिए जाते थे, जिससे माँ-बाप पर खर्च का बोझ कम होता जाता था। विवाह तो बचपन में ही हो जाते, पर गौना तीन या पाँच वर्ष बाद होता था। उससे पहले बहू ससुराल नहीं जाती थी। चन्दरी के पति का देहान्त, गौना होने के पूर्व ही हो गया। अत: वह ससुराल नहीं गई और मायके में ही रहने लगी।

पहले तो वह शायद 'बेटी' या 'बहन' के नाम से पुकारी जाती रही होगी, पर मैंने जब होश सँभाला तब तक वह प्रौढ़ा हो चुकी थी और उसे बुआ का पद मिल चुका था। उसके माँ-बाप दिवंगत हो चुके थे और वह सारे मुहल्ले मे बुआ कहलाने लगी थी।

दान-दक्षिणा से उसे प्रारम्भ से ग्लानि थी। इसलिए सबके साथ अच्छे सम्बन्धों के बावजूद वह श्रम करके ही अपना जीवन-निर्वाह करती थी। भोर-अँधेरे चार बजे उठकर वह चक्की पीसने बैठ जाती और सूर्योदय तक आठ-दस सेर अनाज पीस लेती। इससे उसे प्रतिदिन दो से ढाई आने तक, कमाई हो जाती। उसे कभी काम का अभाव न रहता, क्योंकि एक तो वह काम मे स्वच्छता रखती तथा अनाज को साफ करके पीसती और दूसरे, पिसाई मे आटा घटाती न थी।

जब कभी हमारी नींद पहले खुल जाती, तो चन्दरी बुआ के भजन तथा चक्की की आवाज सुनाई पड़ती। उन दिनों अलार्म-घड़ियाँ तो सुलभ न थीं, अत: जिसे मुहूर्त साधकर कहीं जाना होता या पहले उठना होता, तो वह चन्दरी बुआ को समय पर जगाने को कह जाता। वह उसे नियत समय पर जगा देती। उस समय बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ तारों को देखकर समय का ज्ञान कर लेती थीं।

उसकी आवश्यकताएँ कम थीं, इसलिए दो-ढाई आने में सामान्य रूप से जीवन-निर्वाह हो जाता था। चन्दरी बुआ ने इससे अधिक कमाने की आवश्यकता कभी नही समझी। दिन मे वह मुहल्ले के बच्चों की देखभाल करती और कोई बीमार होता तो उसकी सेवा करती रहती। उन दिनों लेडी डॉक्टर या नर्सों का आविर्भाव नहीं हुआ था, इसलिए प्रसव का काम सयानी स्त्रियाँ या दाइयाँ ही सँभालती थीं। कठिन-से-कठिन समय में भी चन्दरी के आ जाने पर घरवालों और जच्चा को सान्त्वना व साहस मिल जाता था।

उसने न तो कभी पति-प्रेम को जाना और न उसके बच्चे ही हुए, परन्तु जीवन का सारा प्रेम और ममत्व उसने दूसरों के बच्चों पर उड़ेल दिया। मुहल्ले के बच्चे सारे दिन उसे घेरे रहते थे। किसी की पतंग के लिए लेई चाहिए, तो किसी को अपनी गुड़िया के विवाह के लिए रंग-बिरंगे कपड़े। उसके दरवाजे से निराश जाते किसी को नहीं देखा गया।

संगीत की शिक्षा के बिना ही उसे ताल-सुर का यथेष्ट ज्ञान था। विधवा होने के कारण विवाह-शादी के गीत तो वह नहीं गाती, परन्तु भजन और रतजग्गा (रात्रि-जागरण) उसके बिना नहीं जमते थे। मीरा और सूर के पदों को वह तन्मय होकर इतनी मधुरता से गाती कि सुननेवाले भाव-विभोर हो जाते!

जब वह काफी वृद्धा हो चली, तब भी मैंने उसे देखा था। उस समय अनाज पीसना तो उसके वश की बात न थी, फिर भी छोटा-मोटा काम करती ही रहती थी। वह इतनी बूढ़ी हो चली थी कि उसके हाथ और गर्दन काँपने लगे थे और आवाज में भी हकलाहट-सी आ गई थी।

प्रतिवर्ष गर्मी के मौसम में लोग हरिद्वार और बदरिकाश्रम

जाते थे। चन्दरी बुआ से लोगों ने चलने का बहुत बार आग्रह किया, परन्तु उसका एक ही जवाब होता कि मुझ गरीब और अभागिन के भाग्य में तीर्थ-स्नान कहाँ है? यह सब तो भाग्यशाली लोगों को ही मिलता है।

एक दिन उसने मुझे बुलाया और कहने लगी – "आजकल स्वास्थ्य कुछ ठीक नहीं रहता। पता नहीं, कब शरीर छूट जाय। मेरे मन में अपनी ससुराल के गाँव में एक कुँआ बनवाने की इच्छा है। वहाँ एक ही कुँआ है, इसलिए गर्मी में गायें और ढोर तो प्यासे ही रहते हैं, मनुष्यों को भी पूरा पानी नहीं मिल पाता। तुम पता लगाकर बताओ कि एक कुएं पर कितना खर्च आएगा?"

मैं आकर सोचने लगा कि बुढ़ापे में बुआ का दिमाग खराब हो गया है! दूसरों से कभी माँगा नहीं! आजकल बुढ़ापे में दोनों वक्त का खाना भी खुद नहीं जुटा पाती, इस पर भी कुआँ बनवाने की धुन लगी है!

बात आई-गई हो गई, परन्तु दस-बारह दिन बाद देखता हूँ कि लाठी टेकती हुई बुआ सुबह-ही-सुबह हाजिर। मन में, स्वयं पर ग्लानि और क्षोभ हुआ कि जिसकी स्नेह-छाया में बचपन के इतने वर्ष बिताए, जिससे नाना प्रकार के छोटे छोटे काम लिए, बहुत रात गए तक कहानियाँ सुनी; उसके एक छोटे से काम पर भी मैंने ध्यान नहीं दिया।

फिर भी मैंने कहा – "वहाँ पानी बहुत नीचा है, इसलिए कुएँ पर दो-ढाई हजार रुपये खर्च होंगे। यदि कुईं (छोटा कुआँ) बनाई जाय, तो शायद डेढ़ हजार तक में बन सकेगी।"

मेरा उत्तर सुन बुआ के झुर्रियों से भरे चेहरे पर एक गहरी उदासी छा गई और मन-ही-मन वह कुछ हिसाब-सा लगाने लगी। दूसरे दिन मुझे अपने घर आने को कहकर चली गई।

अगले दिन जब मैं उसके यहाँ पहुँचा, तो देखा कि वह मेरा इन्तजार कर रही है। थोड़ी देर बाद इधर उधर देखकर मुझे भीतर की एक कोठरी में ले गई। खाट के नीचे से एक पुराना डिब्बा निकाला और उसे खोलकर मेरे सामने उड़ेल दिया। रानी विक्टोरिया, एडवर्ड और जार्ज पंचम की छाप के पुराने रुपये थे तथा कुछ रेजगारी थी। थोड़े-से चाँदी के गहने थे और एक सोने की 'मूर्ति' थी, जो शायद उसकी माँ ने उसके विवाह के समय उसको दी होगी।

मैं रुपए गिन रहा था और पिछले साठ-सत्तर वर्षों का इतिहास मेरे मानस पर तैर रहा था। सोच रहा था – "इसी वृद्धा की सारी उम्र की कड़ी कमाई का यह पैसा है। उसने कठिन जीवन बिताकर, यहाँ तक कि तीर्थयात्रा की बलवती इच्छा को भी दबाकर इसे इकट्ठा किया है। आज के जीवन के संध्याकाल में सारा-का-सारा संचित धन परोपकार में लगा देना चाहती है।" गिनकर मैंने बताए कि लगभग नौ सौ रुपये हैं। तीन सौ रुपए के गहने होंगे। इतने में काम बन जाएगा और जो कुछ थोड़ी कमी रहेगी, उसकी व्यवस्था हो जाएगी; कोई चिन्ता की बात नहीं है।

वह बोली – "बेटा, मेरे पति के निमित्त कुआँ बनेगा। इसमें दूसरों के पैसे कैसे ले सकूँगी? नहीं होगा तो एक मजदूर कम रखकर कुछ काम मैं कर दिया करूँगी।" मैंने पूछा, "बुआ, कुएँ पर किसके नाम का पत्थर लगेगा?" अपनी धुँधली आँखों को कुछ फैलाने की चेष्टा करते हुए बुआ ने जवाब दिया कि नाम की इच्छा से पुण्य घट जाता है। फिर, मनुष्य तो स्वयं क्षणभंगुर है, उसके नाम का मूल्य ही क्या?

मुझे इस अनपढ़ के तर्क पर आश्चर्य के साथ श्रद्धा हो रही थी। यह कुँआ बनाने के परोपकारी काम के लिए सर्वस्व लगा कर भी, न तो अपने और न अपने पति के नाम का पत्थर लगाने की इच्छा रखती है, जबकि आज एक लाख लगाकर पाँच लाख की इमारत या संस्था पर नाम लगाने की खींचतान धनवान और विद्वानों में लगी रहती है तथा उद्घाटन समारोह किस मंत्री या नेता से कराएँ, इस पर भी काफी सोच-विचार होता है। तय नहीं कर पा रहा था कि कौन बड़ा दानी है किसका दान ज्यादा सात्विक है?

कुछ दिनो बाद उस गाँव में गया, तो देखा कि कुआँ बन रहा था और चन्दरी बुआ भी मजदूरों के साथ 'टोकरी' ढो रही थी। उसकी लगन और परिश्रम देखकर दूसरे मजदूर, कारीगर भी जी-जान से काम में जुटे थे। कुआँ बनकर तैयार हो गया, परन्तु चन्दरी बुआ थककर बीमार हो गई। जिस दिन हनुमानजी का जागरण और प्रसाद हुआ, वह बेहोश-सी थी।

किसी ने कहा – "बुआ, तुम्हारे कुएँ का पानी तो बहुत मीठा निकला है, परन्तु तुम तो बहुत दिन पी नहीं सकोगी।" वह बोली, "मेरा इसमें क्या है? तुम लोगों में रहकर कमाया हुआ पैसा था, वह भले काम मे लग गया। दूसरो के कुएं से सारी उम्र पानी पिया है, इसलिए इसके द्वारा मैंने अपना ऋण चुकाने का प्रयास किया है। मेरी आखिरी इच्छा है कि जब मेरे प्राण निकलें, तो गंगाजल की तरह इसी कुएँ का पानी मेरे मुँह में डालना।"

हनुमानजी के जागरण में आसपास से देहात के काफी लोग इकट्ठे हुए थे। थोड़ी देर बाद ही, वहीं, सबके सामने बुआ का देहान्त हो गया।

आज वह गाँव बड़ा हो गया है और दूसरे भी बहुत-से कुएँ बन गए है, परन्तु चन्दरी बुआ के कुएँ के पानी के समान मीठा पानी किसी का भी नही है। ❏❏❏

मानवता की झाँकी (१०)

स्वामी जपानन्द

(रामकृष्ण संघ के एक वरिष्ठ संन्यासी स्वामी जपानन्द जी ने 'मानवता की झाँकी' नाम से अपने भ्रमण के दौरान हुए उत्कृष्ट अनुभवो को लिपिबद्ध किया था, जो रामकृष्ण कुटीर, बीकानेर से प्रकाशित हुई। इन प्रेरक व रोचक घटनाओं को हम क्रमशः प्रकाशित कर रहे है। – सं.)

अति लोभ का फल

सिन्ध में कराची एक बड़ा समृद्ध बन्दरगाह है। शहर भी अच्छा है, बहुत से धनाढ्य लोगों का निवास है। संन्यासी पंजाब का भ्रमण करता हुआ सिन्ध के हैदराबाद नगर और वहाँ से कराची पहुँचा। वहाँ पहले साधुबेला आश्रम में कुछ दिन ठहरा और बाद में बन्दर रोड एक्सटेंसन में एक हैदराबादी कपड़े के व्यापारी के सौजन्य से उसके नये मकान में ठहरा था। उधर तब हिन्दुओं के केवल तीन ही मकान बने थे और बन रहे थे। पारसी कॉलोनी तैयार हो गई थी।

कराची में संन्यासी का कई सिन्धी सत्संगियों से परिचय हुआ था। उनमें से तीन-चार जन तो नियमित रूप से मिलने आते थे। ये सब वेदान्तवादी थे और खासकर 'विचार-सागर' के अभ्यासी थे। सत्संग में बड़ा आनन्द आता था।

उनमें से एक, जो 'विचार-सागर' का खास अभ्यासी था, संन्यासी को एकान्त में ले जाकर बोला – "महाराज, अभी एक फकीर आया है, वह सोना बनाना जानता है, ताँबे से सोना बनाता है, ऐसी कुछ जड़ी-बूटियाँ है, जिनका रस ताँबे में मिलाकर भट्ठी मे डालने से वह सोना हो जाता है।"

संन्यासी ने कहा – "अरे भाई, विश्वास मत करो। इनमें से अधिकांश ठग होते हैं, तुम इसमें फँसो मत। अगर उस फकीर को सोना बनाना आता, तो वह क्या भीख माँगता फिरता? ऐसे आदमियों से दूर रहा करो।"

– "पर स्वामीजी, वह तो सामने बनाकर दिखाया करता है। पहले भी तो योगी लोग कीमिया जानते थे और अब भी ऐसे लोग हैं, जो किमिया विद्या में निपुण है।"

– "होंगे, पर अधिकांश ठग होते है, लोगों को ठगकर भाग जाते है, इसलिए ऐसे साधु-फकीरों से बचकर रहो।"

वह सिन्धी भक्त चला गया और कुछ दिनों तक मिलने नहीं आया। संन्यासी ने सोचा कि किसी खास काम मे रुक गया होगा या तबीयत नरम-गरम होगी। उसका एक साथी एक दिन संन्यासी से मिला और बोला – "आपको मालूम तो होगा कि वह साँई पागल हो गया है? उसे कोई फकीर मिला था, जिसने सोना डबल करने का लालच दिखाकर उसके घर पर ही भट्ठा डाली थी। उसकी औरत के जितने भी सोने के गहने थे, वह सब लेकर ताँबे के साथ भट्ठी में डालकर सोना डबल कर रहा था। ५-६ दिनो तक भट्ठी का काम चालू था। इतने में वह फकीर गायब हो गया, तब उसने भट्ठी में से पात्र उठाकर देखा तो उसके अन्दर पत्थर और ताँबे के टुकड़े पड़े थे – सोना गायब था। चोरी की बात मालूम होते ही घर में झगड़ा मच गया। छोटे छोटे बच्चे हैं, व्यापार में नुकसान ही हो रहा था। उसके ऊपर करीब सात हजार का कर्ज है और साढ़े तीन हजार का सोना लेकर कीमियावाला फकीर भाग गया। घर की बिल्कुल अकिंचन-जैसी हालत हो गई है। अब समस्या यह है कि उसका गुजारा कैसे चले?"

इससे वह सिन्धी भगत चिन्ताग्रस्त तथा घर व बाहर में अपमानित होने से पागल जैसा हो गया था, घर से उसकी स्त्री और सगेवालों ने निकाल दिया था, इसलिए इधर उधर भटकता फिरता था, और अनुग्रहपूर्वक परिचित स्नेहियो के रोटी देने से खा लेता था। यह हकीकत जानकर संन्यासी को बड़ा दुःख हुआ। सावधान करने पर भी लोभवशात् उसने यह काम कर डाला। खराब प्रारब्ध उसे खीच ले गया। अब क्या किया जाय। मानसिक क्लेश ही इस उन्माद का कारण है. अगर इसे हटाया जाय तो शायद अच्छा भी हो जाय।

संन्यासी जिन सज्जन (श्री गुरनामल) के घर अतिथि थे, उनका पुत्र संन्यासी से अधिक सम्पर्क रखता था और उदारदिल था, उससे पूछताछ से ज्ञात हुआ कि कपड़े के व्यापारियों का ही सात हजार का कर्ज है; माल लिया था, पर पैसा चुका नही सकता था, इसलिए उनकी और से दबान के रूप मे माल देना बन्द हो गया था; इससे हालत और भी खराब हो गयी थी।

संन्यासी ने कहा – "पर भाई, इसको तो बचाना चाहिए। वह दुख के मारे पागल-सा हो गया है, इसका जीवन बरबाद हो जाय, यह तो ठीक नही है। फिर वह तुम्हारे सगो मे ही तो आता है, तुम इसमे जरा उदारता दिखाओ। ईश्वर-कृपा से तुम रुपये-पैसे मे तो सुखी हो, पांच-दस हजार रुपये तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं है।"

– "हम क्या कर सकते हैं स्वामीजी, हमारा ही तो ज्यादा पैसा है – आधे से अधिक, पर और तो नहीं छोड़ेंगे।"

– "मै छोड़ने को नही कह रहा हूँ, मै तो कहता हूँ कि तुम या वे दूसरे लेनदार, इस शर्त पर उनकी दुकान सँभाल लें कि जब तक पैसा वसूल न हो जाय, वे दुकान को कब्जे में रखेंगे और कर्ज वसूल होते ही दुकान लौटा देगे, ताकि वह जान ले कि आय का मार्ग बन्द नही होगा। उसके घर खर्च के लिए जिससे गुजारा चल जाय, मासिक इतनी रकम दुकान से

दी जाय। वह भी उसकी स्त्री के हाथ दी जाय। यदि दुकान पर आवे, तो उसे काम करने दिया जाय, उसके बड़े लड़के (आयु ११-१२ वर्ष) को भी दुकान पर बैठाया जाय, मुझे लगता है कि इससे उसका दिमाग ठीक हो जायेगा। क्यों इतना कर सकोगे?"

उसने कहा – बड़े भैया तथा दूसरों से बात करके देखूँगा। ऐसी व्यवस्था तो हो सकती है। (पिता उस समय हैदराबाद में थे, ज्यादा समय उधर ही रहा करते थे।)

तीन-चार दिनों में यह बात तय हो गई। लेनदार सभी सगेवालों में से थे और उस व्यक्ति की धार्मिक भावना देखकर उसके प्रति श्रद्धाभाव भी रखते थे। उसकी ऐसी स्थिति पर सभी दुखी थे। सब राजी हो गए और जैसा संन्यासी ने कहा था, उसकी पत्नी के साथ पक्का करार करके उसी शर्त से दुकान कब्जे में ले ली और व्यापार चालू रखा. इसमें इन्हें जरा भी मुसीबत नहीं आयी। उन लोगों ने आपस में उस दुकान की मारफत कुछ व्यापारिक धन्धा करके रुपये वसूल करने का निश्चय कर लिया था।

यह बन्दोबस्त होते ही वह सिन्धी भक्त स्वस्थ हो गया। उसको साथ लेकर उसका एक पुराना मित्र जब संन्यासी से मिलने आया, तो आते ही एकदम पैर पकड़कर खूब रोने लगा, "आपने मना किया था, पर लोभवश मैंने सुना नहीं, और नतीजा खराब आया।"

– "खैर, जो कुछ हुआ सो हुआ, अब सावधानी से काम करो, अपनी स्त्री से मत लड़ो। उसने घर से निकाल दिया था – इस विषय पर उससे या और किसी से चर्चा ही मत किया करो। ऐसे बर्ताव करो मानो कुछ हुआ ही नहीं। हो तो पक्के वेदान्ती, फिर क्या?" वह सिर झुकाए चुप बैठा रहा।

व्यापारियों की वैसी उदारता में थी मानवता की झाँकी!

मोटा भाई

काठियावाड़ (गुजरात) में संन्यासी को अब पूरे चार वर्ष हो चुके थे, एक काठी दरबार-श्री के दीवान साहब के साथ संन्यासी का परिचय हुआ और अल्पकाल में ही प्रगाढ़ सम्बन्ध स्थापित हो गया (१९२९-३५)। घर के थे मोटा भाई। (बड़े भाई या घर का जो सबसे बड़ा हो, किसी किसी परिवार में पिता को भी मोटा भाई कहने का रिवाज है।) संन्यासी भी उन्हें मोटा भाई कहकर बुलाते थे। प्रेमी तथा उदारदिल के मोटा भाई थे खूब खर्चीले स्वभाव के और आमदनी से अधिक खर्च होने से कभी कभी बड़ी असुविधा में भी पड़ जाते थे। चौथे वर्ग का छोटा-सा स्टेट था और मोटा भाई के विपुल परिश्रम तथा आर्थिक उदारता के कारण नये दरबार-श्री गद्दी पर राज्याधिकार प्राप्त कर सके थे। दरबार-श्री मोटा भाई के एक घर के आदमी जैसे थे, अपने बेटे-जैसा कहने से अत्युक्ति नही होगी। उनके पुत्रों के साथ रहते, खाते-पीते और आनन्द करते। (मोटा भाई – जानी – ब्राह्मण थे) .. मोटा भाई के घर संन्यासी का स्थान भी अपना जैसा बन गया था। हर समय ध्यान रखते थे – क्या चाहिए, किस वस्तु की आवश्यकता है और सहर्ष पहुँचा देते थे। बारम्बार कहते, "आप मुझे बोलते क्यों नही हो, इसमें संकोच क्या? क्यो तकलीफ उठाते हो। जिस चीज की आवश्यकता होने पर मुझे न कहो तो लड़कों में से किसी से कह देना। कष्ट मत उठाना आदि।"

शीत ऋतु का समय था। खुब ठण्ड पड़ रही थी, मुम्बइ में भी उस साल शीत-लहर चलने से सभी लोग परेशान थे। समुद्र के किनारे ठण्ड कम लगने से लोग ज्यादा गरम कपड़े नहीं रखते, पर उस साल तो सब ठण्ड के मारे जमने लगे और गरम कपड़े के व्यापारियों ने खूब कमाया।

मुम्बई जाना था। घर के सब कोई जा रहे थे, मोटा भाई ने संन्यासी से भी साथ चलने का आग्रह किया, पर संन्यासी के पास गरम कोट या स्वेटर अथवा कोई पहरावा न होने के कारण वह मन-ही-मन संकोच करने लगा। घर मे दर्जी बैठाए थे और राजकोट के बाजार मे जो भी उत्तम गरम कपड़े के थान मिले, सब ले लिए थे। घर मे लड़के-पोते आदि कुल मिलकर करीब पचास आदमी, सबके लिए गरम बनियान या कोट, जो भी पसन्द हो, चार दर्जी जल्दी जल्दी बना देते थे।

उनका एक छोटा भाई अलग रहता था। उसके १०-११ लड़के रोज एक बार मोटा भाई के पास जरूर आया करते थे। उन्होंने देखा कि इनके शरीर पर मामूली गरम कपड़े या सूती वस्त्र हैं। बस, हुक्म हो गया कि इन सबके लिए कोट पहले बना दो, घरवालों के लिए बाद में कर देना। सुगृहिणी धर्मपत्नी इस बात पर नाराज हुई, कहा – "ये तो इधर ही रहेंगे, इनके बाद में करने से चलेगा, हमें तो जाना है और समय थोड़ा ही रह गया है।" पर – "ना इनके लिए पहले बनवा दो।" एकान्त में संन्यासी से कहा, "स्वामीजी, ये लड़के सब देख रहे थे और इनके पास अच्छा गरम कपड़ा नहीं है, बालक ही तो हैं, यह सोचकर मन में दुख पायेंगे कि हमको नही दिए। यह भेदभाव पैदा करता, इसलिए मैंने उनके वास्ते पहले बनवाने को कहा।"

अब क्या करते – और दो दर्जी लगाकर सिलाई का काम जल्दी चलाया। बाजार में ढूँढ़ने पर भी उस तरह की चीज न मिली, मामूली गरम कपड़े का थान ले आए और अपने पोते-पोतियाँ-लड़कों के लिए और स्वयं के लिए भी उसी मस्ती चीज से कोट वगैरह बनवाये। स्वयं के लिए सबसे अन्त में बनवाये, जिस रोज जाना था, उससे एक दिन हा पहले तयार हुआ। – "अरे, यह क्या? तुम सब किसी ने भी ख्याल नहीं

रखा कि स्वामीजी के पास कोई गरम कपड़ा नहीं हैं, एक कोट तो चाहिए न? मैं तो पूछना ही भूल गया, अब क्या हो?'' उठ खड़ा हुआ और घर में अपने लिए बनाया हुआ गरम कोट उठा लाया और प्रेम से जबरदस्ती पहना दिया। कुछ बड़ा होता था, दर्जी को बुलाकर कटवाकर ठीक करवा दिया। संन्यासी ने बहुत कहा, ''रहने दीजिए, मुम्बई जाकर स्वेटर ले लूँगा, आपके लिए तो विशेष आवश्यक है।''

– ''नहीं, मेरे लिए खास जरूरत नहीं है, मैं ही मुम्बई जाकर स्वेटर या कोई गरम कपड़ा ले लूँगा।''

एक महीने से अधिक मुम्बई मे ठहरकर वापस राजकोट आने की बात तय हुई थी। इतने में बिहार में भूकम्प से भयंकर नुकसान हुआ। खार (मुम्बई में रामकृष्ण मिशन) के स्वामीजी ने मुझसे अहमदाबाद जाकर मित्रों से प्रयास करने को कहा कि यदि वे मिशन के सेवाकार्य मे कुछ मदद दिला सकें। संन्यासी ने वैसा ही प्रयास किया और कुछ रुपए भी मिले। एक बड़े नेता की ओर से, आर्थिक सहायता करने का निर्देश बारम्बार आ रहा था, इस कारण बहुत-से लोग वचन देकर भी पीछे हट गये, खैर वह अन्य प्रसंग है!

वर्तमान कार्य हो जाने के बाद अहमदाबाद से राजकोट जाना था। मगर रेल-भाड़े के लिए पास में पैसे न थे। अगर किसी ने खर्च के लिए नहीं पूछा तो संन्यासी ने पैदल ही जाने का निश्चय कर लिया था। वह जिन सज्जन के घर ठहरा था और वहाँ के जो स्नेही लोग थे, सभी बड़ा प्रेम रखते थे और ख्याल आने पर भाड़े आदि की व्यवस्था करते, पर संन्यासी का नियम था – बिना पूछे कुछ न कहना। इसलिए यदि किसी ने न पूछा तो पैदल ही राजकोट जाने का निश्चय था।

टेलीग्राम आया कि मोटा भाई अकेले ही राजकोट वापस जा रहे है; साथ चलने को तैयार रहें। पर अब भी भूकम्प-पीड़ितों की मदद के लिए अमुक के पास से वचन लेना बाकी था, इसलिए साथ जाना सम्भव न था। जिन सज्जन का मेहमान हुआ था, वे भी मोटा भाई से मिलने को संन्यासी के साथ स्टेशन गये। ये पहले से ही उनके परिचित थे।

गाड़ी आई, मिले, बातचीत हुई, फण्ड के बारे में सारी जानकारी ली – तभी गाड़ी का समय पूरा हो गया, गार्ड साहब ने सीटी बजायी, गाड़ी चली और मोटा भाई ने खिड़की में से पूछा – ''स्वामीजी, आपके पास किराया है न?'' संन्यासी हँसकर चुप रह गया। उन्होंने झट दस रुपये का एक नोट निकालकर कहा – ''रखिए, रखिए।'' गाड़ी तेज चलने लगी थी, साथी सज्जन ने दौड़कर नोट ले लिया। गाड़ी चली गई।

सज्जन ने कहा, ''क्यों स्वामीजी, हम तो हैं न। आपके पास खर्चा नहीं है, तो इशारा करना था।'' – ''पर महाशय, अब तो जरूरत नहीं है, ईश्वरेच्छा से जो आ गया, सो तो काफी है'' – कहते हुए सन्यासी ने बात दबा दी।

सप्ताह भर बाद राजकोट लौटकर मोटा भाई से मिलने गया, तो उसके एक छोटे भाई वहाँ हाजिर थे। मकान में घुसते ही वे बोले, ''क्यों स्वामीजी, क्या आपको मालूम है कि मोटा भाई अबकी बार जब मुम्बई से आये, तो कैसी बुरी स्थिति में आये थे? पास में दस ही रुपये थे और अहमदाबाद में उसे आपको दे दिया था। रास्ते में न चाय पी, न कुछ खाया और यहाँ जब पहुँचे, तो मैं स्टेशन पर लेने गया था, तभी कुली-मजदूर को चुका सका।''

– ''अरे, अरे, यह क्या कह रहे हो? मुझे कैसे मालूम हो सकता था कि, पास में दस ही रुपये थे और सो ही मुझे दे दिए थे। यह तो आपने अभी कहा तो मालूम हुआ। मैंने तो माँगा भी न था और गाड़ी चलने के बाद खिड़की में से रुपये दिए थे। अरे, मेरे लिए इतना कष्ट उठाया, हे भगवान!'' इतने में मोटा भाई हँसते मुँह बाहर आए और सप्रेम मिले।

इसमे मानवता की झाँकी सुस्पष्ट है!

❏❏❏

मातृ-वन्दना

जितेन्द्र कुमारी तिवारी

सारदा माँ का है सम्बल,
आज भवसागर-तरण में।
तृप्ति मिलती है मुझे बस,
सारदा-माँ की शरण में।।

जगत् में भटका किया मैं,
स्वार्थ का आसव पिया मैं।
वासनाओं में भटकता,
व्यर्थ ही जीवन जिया मैं।
खोजता सुख को रहा मैं,
कामनाओं के वरण में।
तृप्ति मिलती है मुझे बस,
सारदा-माँ की शरण में।।

चाह से है मन न भरता,
पग उसी की ओर धरता,
आग में घी ज्यों पड़ा हो,
और भी उद्दीप्त करता।
प्राप्त करना है असम्भव,
जिन्दगी को 'हा' मरण में।
तृप्ति मिलती है मुझे बस,
सारदा-माँ की शरण में।।

एक उनका ही सहारा,
दूसरा कोई न चारा,
मैं अकिंचन हूँ, तृषित हूँ,
माँ बहाती · स्नेह-धारा।
चेतना के स्वर जगातीं,
माँ मेरे अन्तःकरण में।
तृप्ति मिलती है मुझे बस,
सारदा-माँ की शरण में।।

जितेन्द्र कुमारी तिवारी

एक ही है आस तेरा, सारदा-माँ।
तुम करो उद्धार मेरा, सारदा-माँ।।

है विकट संसार-सागर की तरंगें,
उठ रहीं जिनमें निरर्थक हैं उमंगें,
तृप्ति का आभास भी मिलता नहीं है,
दर्द ही मिलता घनेरा, सारदा-माँ।

जिस तरफ जाऊँ अँधेरा-ही-अँधेरा,
है अमा की रात, भय ने आज घेरा,
एक ही तेरा सहारा है मुझे बस,
दूर है अब तक सबेरा, सारदा-माँ।

थक गए हैं पाँव, फिर भी चल रहा हूँ,
बिन तुम्हारे माँ बहुत व्याकुल रहा हूँ,
व्यर्थ भव के भोग-तृष्णा में फँसा हूँ,
तव चरण चाहूँ बसेरा, सारदा-माँ।

जगत् का जंजाल मुझको है फँसाए,
मुक्ति का सन्मार्ग कोई दिख न पाए,
तुम बनो सम्बल तभी तो हो सकेगा-
दूर जीवन का अँधेरा, सारदा-माँ।

एक ही है आस तेरा, सारदा-माँ।
तुम करो उद्धार मेरा, सारदा-माँ।।

पुरुषोत्तम नेमा

मूर्त रूप ममता माँ शुभदा,
तू ही गुरु शिव-शक्ति विधाता,
माता-पिता बन्धु, विद्या तू
तू ही सबकी गति-मति दाता।

माँ, चरणों में पड़ा हुआ हूँ,
निज कर कमल सीस पर धर दे,
'हरि इच्छा' कहकर सब सह लूँ,
ऐसी गति मति चित में भर दे।

घटा रही सम्पत्ति आसुरी,
बढ़ा रही है सात्त्विकता,
माता की पहचान यही है
ममता करुणा निर्मलता।

पाप-ताप सारे हर लेती,
लता, भक्ति की सूख न पाती,
माता की ममता बच्चों पर
नित आशीष-सुधा बरसाती।

आम्र समान झुकूँ फल पाकर
नहीं अरण्ड समान तनूँ,
चाह यही मेरी माता से,
मैं बेहतर इन्सान बनूँ।

कृपा-कटाक्ष-तरणि जननी की,
मिल जाती है जिनको,
हो जाता तरणीय सहज ही,
भवसागर तब उनको।।

माँ-सारदा का अन्तिम सन्देश

स्वामी हर्षानन्द

मा भैष्ट पुत्रि तव नास्ति भयं भवस्य, श्रीरामकृष्णचरणौ शरणागताऽसि।
शान्तिं यदीच्छसि परां तव मा स्म दर्शः छिद्रं तु कस्यचिदपीह जगत्तवैव।।

– पुत्री! तुम संसार से भयभीत मत होओ। सांसारिक दुःख तुम्हें सन्तप्त नहीं कर सकते, क्योंकि तुमने श्रीरामकृष्ण के चरणों का आश्रय लिया है। बेटी! यदि तुम परम शान्ति चाहती हो, तो इस संसार मे किसी में भी दोष मत देखना, क्योंकि सारा संसार तुम्हारा अपना ही है।

जहाँ नारियों की पूजा होती है ...

स्वामी आत्मानन्द

किसी भी देश की नारियों की अवस्था के आधार पर उसकी सभ्यता और सस्कृति का आकलन किया जा सकता है। यदि किसी सभ्यता के मर्म में पैठ करनी हो और उसकी श्रेष्ठताओं का मूल्याकन करना हो, तथा उसकी सीमाओं की धारणा करनी हो, तो उसके अन्तर्गत नारियों की अवस्था और हैसियत का क्या इतिहास रहा है, इसका अध्ययन आवश्यक हो जाता है। मानव-स्वभाव में, स्वार्थपरता रूढ़ है। इस प्रबल स्वार्थवृत्ति का नियमन करने में समाज जितनी मात्रा में सफल होता है, उतनी मात्रा में उसकी सभ्यता को उन्नतिशील माना जाता है। समाज के शैशव-काल से यदि कोई समुदाय पुरुष-वर्ग पर नितान्त निर्भरशील रहा है, तो वह है नारी-समुदाय। किसी समाज की उन्नति का मोटा मापदण्ड यह रहा कि उसने नारी को कितनी स्वत्तत्रता दी और उसे समाज में कैसा स्थान दिया। किसी समाज के वैवाहिक नियमों और परम्पराओं को पढ़ने से ज्ञात होता है कि उसके पुरुषों ने नारियों को बाजार में मोल-तोल की वस्तु समझा अथवा यह माना कि पत्नी अपने पति की महत्त्वपूर्ण संगिनी है, जिसका सहयोग पारिवारिक जीवन के सुख-साफल्य के लिए अनिवार्य है। जब हम किसी समाज के नैतिक नियमों को पढ़ते हैं, तो उससे विदित हो जाता है कि उसका पुरुषवर्ग नारियों के नैतिक जीवन का जो मापदण्ड प्रस्तुत करता है, वैसा ही मापदण्ड अपने लिए प्रस्तुत करता है या नहीं। नारीवर्ग के प्रति समाज की सहानुभूति कैसी है, इसकी कसौटी विधवाओं के प्रति उसका व्यवहार है। संगीत और नृत्य जैसी ललित-कलाओं में उन्नति इस बात पर निर्भर करती है कि इन कलाओं में पारगत होने की इच्छा रखनेवाली नारियों को समाज कितनी सुविधाएँ प्रदान करता है। नारियों की वेशभूषा और आभरण समाज की सम्पत्ति का संकेत देते है और बताते हैं कि व्यापार, खनिकर्म और धातु-विज्ञान तथा सिलाई-बुनाई, कशीदाकारी व पच्चीकारी के क्षेत्र में वह कितना आगे बढ़ा हुआ है। समाज में शिक्षा की सार्थकता का आकलन इससे किया जा सकता है कि उसके नारीवर्ग को उसका कितना लाभ मिला। नारियों को समाज में कार्य करने की कितनी स्वतत्रता थी तथा वे सार्वजनिक जीवन में कितना भाग ले सकती थीं, इससे हमें तत्कालीन प्रशासन का एक चित्र प्राप्त होता है और उससे हम यह भी समझने में समर्थ होते हैं कि समाज ने इस कठिन सत्य को कहाँ तक समझा था कि समाज के विकास और उसकी उन्नति के लिए नारियों की भी एक विशेष देन है।

जब हम इस परिप्रेक्ष्य से अपने देश को देखते हैं, तो नारी-जाति के बारे में हमें कई महत्त्वपूर्ण तथ्य प्राप्त होते हैं। अत्यन्त प्राचीन काल से भारत में दो प्रकार की परिवार-संस्थायें प्रचलित रही हैं – एक है पितृ-सत्तात्मक और दूसरी मातृ-सत्तात्मक। पितृ-सत्तात्मक व्यवस्था में पिता ही प्रधान होता है और वही परिवार के सभी कार्यों के लिए उत्तरदायी होता है। इस व्यवस्था में नारी स्वतत्र नहीं होती और उसे हर बात के लिए पुरुष का मुँह जोहना पड़ता है। इसमें परिवार की वश-परम्परा पुरुष के नाम पर चलती है। दूसरी व्यवस्था में माता ही परिवार की कर्णधार होती है। वंश-परम्परा माता के नाम पर चलती है और नारी को पुरुष से अधिक महत्त्व प्राप्त होता है। इस व्यवस्था में पारिवारिक समस्याएँ उतनी नहीं रहतीं, जितनी पितृ-सत्तात्मक व्यवस्था में होती हैं। यद्यपि अपने देश में ये दोनों प्रकार की व्यवस्थाएँ रही हैं, पर पितृ-सत्तात्मक व्यवस्था का ही अधिक जोर रहा है। हमारे यहाँ जो चिन्तक और मनीषी हो गये हैं, उनमें बहुतों ने इन दोनों व्यवस्थाओं को समन्वित करने का प्रयास किया है।

आज भारतीय समाज में कन्या के जन्म के प्रति एक प्रकार की उदासीनता का भाव दिखता है। पुत्र का जन्म परिवार के लिए जितना आंनन्दकारी रहा है, उतना कन्या का नहीं। पर वैदिक काल में पुत्रजन्म के लिए जैसे पुसवन की क्रियाएँ प्रचलित थीं, वैसे ही कन्या के जन्म के लिए भी कुछ क्रियाओं का विधान दिखता है, तथापि यह सत्य है कि पुंसवन के समान ये दूसरी क्रियाएँ लोकप्रिय न हो सकीं। हम अथर्ववेद में पुंसवन की विधि पढ़ते हैं, जिसका अवलम्बन करने से कन्या का जन्म न होकर पुत्र के जन्म का विश्वास दिलाया गया है। पर तब भी कन्या के जन्म को उतना चिन्तादायक नहीं माना गया था, जितना कि वह बाद में हो गया। हम बृहदारण्यक उपनिषद् में पढ़ते हैं – **अथ य इच्छेद् दुहिता मे पण्डिता जायेत ... तिलौदनं पाचयित्वा अश्नीयाताम्।** (६/४/१७) अर्थात् "जो व्यक्ति चाहे कि मेरी पुत्री विदुषी हो, तो वह तिल-चावल की खिचड़ी ... पकाकर खाये।" इससे यह पता चलता है कि उस काल में लोग सस्कार-सम्पन्ना विदुषी कन्या के जन्म की भी कामना करते थे और उसके लिए आवश्यक अनुष्ठान सम्पन्न करते थे। संयुक्त निकाय में प्रतिभावान और शील-सम्पन्ना कन्या को पुत्र की अपेक्षा अधिक वांछित बताया गया है। कुमार-सम्भव तो कहता है – '**कन्येयं कुलजीवितम्**'- अर्थात् 'कन्या कुल की गौरव है।'

हमारे प्राचीन ग्रन्थों से पता चलता है कि लड़कियों को वेदाध्ययन कराया जाता था और उनका उपनयन-संस्कार होता था। वे देवताओं के निमित्त यज्ञ में आहुतियाँ दे सकती थीं। इस कार्य के लिए पुत्र की अनिवार्यता नहीं थी। तब कन्या का विवाह

भी कोई समस्या नहीं थी, उसका समाधान कन्याएँ स्वयं कर लेती थीं। तब लड़की के विधवा होने का डर भी उसके माता-पिता को विशेष नहीं सताता था, क्योंकि समाज में विधवा के पुनर्विवाह की प्रथा प्रचलित थी।

पर धीरे धीरे समय के साथ परम्पराएँ बदलती गयीं। श्राद्ध-तर्पण आदि का महत्त्व बढ़ गया, जिसके लिए केवल पुत्र को ही योग्य माना गया। पितरों की पूजा के लिए कन्या को अनुपयुक्त माना गया. विधवा-विवाह और नियोग-प्रथा का निषेध किया गया और बाल-विवाह प्रचलित होने लगे। अन्तर्जातीय विवाह निषिद्ध किये गये। एक ही जाति की अनेक उपजातियाँ बनीं और एक ही उपजाति में विवाह करना वैध घोषित किया गया। इससे कन्या के विवाह के लिए वर खोजने का दायरा तंग होता गया। फिर बाल-विवाह प्रचलित होने से लड़की के विधवा होने का खतरा पैदा हो गया और विधवा-विवाह निषिद्ध होने से उसके आजन्म दुःख-भोग की आशंका दृढ़मूल हो गयी। फिर ५वीं शताब्दी में सती-प्रथा के प्रचलन ने कन्या के माता-पिता के दुःख को असीम कर दिया। अपनी लाड़ली बेटी को अग्नि में जलकर मरते भला कौन माता-पिता देख सकता है? इन्हीं कारणों ने लड़की के जन्म को परिवार में दुःख के जन्म का जामा पहना दिया। और तब से हमारे देश के पतन का इतिहास शुरू हो गया।

जब तक नारी भारत में पुरुष की सही अर्थों में अर्धांगिनी रही, तब तक भारत का सभी क्षेत्रों में अभ्युदय हुआ। उसे हम भारत का स्वर्ण-काल कहते हैं, जब नारी पुरुष के अत्याचारों की शिकार नहीं थी। उसे पुरुष के ही समान वेद एवं अन्य शास्त्रों के पढ़ने की स्वाधीनता थी। उसे उपनयन का अधिकार था – स्मृतिकार हारीत और यम कहते हैं – **पुराकल्पे तु नारीणां मौंजी-बन्धनमिष्यते**। इन विद्यार्थिनियों के दो वर्ग थे – एक को 'ब्रह्मवादिनी' कहते थे और दूसरे को 'सद्योवाहा'। ब्रह्मवादिनी आजन्म कौमार्य का व्रत ले ब्रह्मविद्या के प्रचार-प्रसार में संलग्न रहती तथा सद्योवाहा १६ वर्ष की उम्र तक विद्याध्ययन के पश्चात् विवाह करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करती। तब लड़कियों का विवाह १५-१६ वर्ष की उम्र से पहले नहीं होता था। नारियाँ शिक्षण का भी कार्य करती थीं। जो आचार्य की पत्नी होती, उसे 'उपाध्यायानी' कहते और जो स्वय शिक्षण देने का कार्य करती, उसे 'उपाध्याया'। नारी आवश्यकतानुसार अस्त्र-शस्त्र की भी शिक्षा प्राप्त करती। और उसकी इस शिक्षा का प्रमाण तो राजपूताने की नारियाँ अभी, इसी युग में रही हैं।

परन्तु जब से भारत में पुरुष अधिक स्वार्थी बन गया और अपनी लिप्सा-पूर्ति व अहंकार-तुष्टि हेतु नारी को अधिकाधिक बन्धनों में जकड़ता गया, तब से देश का पतन शुरू हो गया। यह पतन का इतिहास लगभग दो हजार वर्ष से प्रारम्भ होता है। बाल-विवाह की कुप्रथा के कारण नारियाँ एक ओर शिक्षा से वंचित हो गयीं और दूसरी ओर मात्र पुरुष की तुष्टि का साधन और बच्चे जननेवाली मशीन बन गयीं। इससे हमारे देश में शारीरिक दृष्टि से निर्बल, मानसिक दृष्टि से अस्थिर और आध्यात्मिक दृष्टि से भ्रम और कल्पनाओं में भटकनेवाली जिस सन्तति-परम्परा का सूत्रपात हुआ, उससे हम अपने देश की सुरक्षा न कर पाए; बाहर से आकर आक्रमण करनेवाली मुगल, पठान, हूण, शक आदि बर्बर जातियों के अत्याचार से हम अपने आपको न बचा पाये। ये जातियाँ असभ्य थीं. उनके लिए नारी महज खिलौना थी। उनकी पाशविक प्रवृतियों के अन्धोन्माद से अपने धर्म और संस्कृति की सुरक्षा के लिए हमारा यह बृहत्तर भारतीय समाज और भी सिमटता गया, सकीर्ण होता गया। अपनी नारियों की सुरक्षा के लिए उसने नारी पर कड़े प्रतिबन्ध लगा दिये। इस दूषित मनोवृति से अपने मानस को बचाने के लिए भारतीय समाज को कड़े सघर्ष में से गुजरना पड़ा।

आज परिस्थितियाँ अलग हैं। विश्व के उन्नत राष्ट्रों में नारी को प्राप्त स्वतत्रता ही वहाँ की प्रगति का एक प्रमुख कारण है। पर दुःख यह है कि यह स्वतत्रता स्वच्छन्दता की अति को छूने जा रही है, जिसका भयंकर परिणाम उन राष्ट्रो पर पड़नेवाला है। टूटते परिवार इसके सजीव उदाहरण हैं। इससे हमें सबक लेना है। हमने भी आज भारत में नारी को स्वतत्रता दी है। संविधान में लिंग के आधार पर कोई भेद नहीं किया गया है। भारत में नारी किसी भी पद या कार्य के लिए प्रतिबन्धित नहीं है। यह हमारे लिए सुनहरा मौका है, जब नारी-शक्ति का जागरण निर्बाध रूप से साधित हो सकता है। यदि इस जागरण के मूल में धर्म और अध्यात्म का आधार हो, तब तो देश का चरित्र गठित होगा. अन्यथा हमारी भी पाश्चात्य देशों की भाँति दुर्गति ही होगी।

स्वामीजी कहते थे. "पुरुष और नारी एक पक्षी के दो डैने हैं। यह समाज-रूपी पक्षी तब तक ठीक नहीं उड़ सकेगा. जब तक उसके दोनों डैने समान रूप से सबल और स्वस्थ न हो।" एक डैना अस्वस्थ हो तो पक्षी ठीक ढंग से उड़ नहीं पाता। इसलिए स्वामीजी पुरुष और नारी – दोनों को समान रूप से शिक्षित, संस्कारित और सशक्त देखना चाहते थे। वे स्मृतिकार मनु महाराज की इस मान्यता के कायल थे –

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला क्रियाः॥

– "जहाँ पर नारियों का समादर होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ उनकी अवहेलना होती है. वहाँ उस देश को उन्नत करने के सारे उपाय विफल हो जाते हैं।"

हम नारियों को लांछित और अपमानित करने की भूल एक बार कर चुके हैं और उसका फल आज भी भोग रहे हैं। दुबारा ऐसी भूल हम न करें यही ईश्वर से प्रार्थना करते हैं।

(आकाशवाणी, रायपुर से १७-९-१९८० को प्रसारित)

मासिक 'विवेक-ज्योति' में वर्ष २००३ ई. के दौरान प्रकाशित लेखकों तथा उनकी रचनाओं की सूची

श्री रामकृष्ण मठ
मदुरै - ६२५ ०१४

फोन-०४५२-२६८०२२४: २६८११८१
Email : rkmath@eth.net
Website : www.ramakrishnamath-madurai.org

सेवा के लिए आमन्त्रण

प्रिय महोदय,

भगवान के नाम पर शुभकामनाएँ तथा नमस्कार

कलकत्ते में पुनीत गंगा के तट पर बेलूड़ में स्थित रामकृष्ण मठ तथा रामकृष्ण मिशन की एक शाखा के रूप में इस नगर में १९८७ ई. में रामकृष्ण मठ, मदुरै की स्थापना हुई। परन्तु १९९८ ई. में ही इसमें एक उपयुक्त रामकृष्ण मन्दिर का निर्माण हो सका। और केवल उसके बाद से ही मदुरै का श्रीरामकृष्ण मठ अपने कार्यक्षेत्र का विस्तार कर सका। अतएव यह कहा जा सकता है कि मदुरै का रामकृष्ण मठ एक पाँच वर्ष के उत्साही बालक के रूप में सेवा के नए नए अवसर ढूँढ़ रहा है।

भविष्य के लिए हमारे पास अनेक योजनाएँ हैं - एक विशाल दातव्य अस्पताल, एक निःशुल्क कोचिंग केन्द्र, निर्धन बच्चों के भोजन की व्यवस्था और एक निःशुल्क सार्वजनिक ग्रन्थालय तथा वाचनालय। इन सारी हितकर योजनाओं के क्रियान्वयन में हम आपके सहयोग तथा सहायता की अपेक्षा करते हैं।

१. दातव्य अस्पताल के लिए एक भवन की आवश्यकता होगी, जिसके निर्माण में ३० लाख रूपये व्यय होंगे।

२. प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च विद्यालयीय तथा कालेज स्तर के निर्धन छात्रों के लिए निःशुल्क कोचिंग केन्द्र चलाने के लिए हमें तत्काल एक पक्की इमारत की जरुरत है, जिसके निर्माण में १० लाख रूपये लगेंगे। ये कक्षाएँ प्रतिदिन सन्ध्या को ५ से ७ बजे के दौरान लगती हैं।

३. प्रतिदिन ४०० बच्चों को भोजन कराने की व्यवस्था हेतु हमें एक भवन की आवश्यता है, जिसके निर्माण में ५ लाख रूपये लगेंगे।

४. सार्वजनिक ग्रन्थालय तथा वाचनालय के लिए भवन निर्माण में १५ लाख रूपये व्यय होंगे।

५. विविध उद्देश्यों के लिए हॉल- धार्मिक प्रवचनों, उत्सवों, व्यक्तित्व विकास के शिविरों, चिकित्सकीय शिविरों आदि के संचालन हेतु एक हॉल की आवश्यकता है। इसके निर्माण में १५ लाख रूपये लगने की संभावना है।

इस प्रकार इन पाँच परियोजनाओं के लिए कुल ७५ लाख रूपयों की आवश्यकता होगी। उदारचेता लोगों से हमारी अपील है कि वे इन मानवीय सेवाकार्यों के लिए उदारता पूर्वक दान करें।

दानदाताओं के नाम संगमर्मर की पट्टिकाओं पर लगाये जाएंगे। और मठ को दिए गए दान आयकर की धारा ८०-जी के अन्तर्गत करमुक्त है। दान की राशि आप चेक, डिमान्ड ड्राफ्ट या मनीआर्डर के द्वारा 'रामकृष्ण मठ, मदुरै' के नाम बनवाकर इस पते पर भेज सकते हैं -

The President Swamiji
Sri Ramakrishna Math,
Reserve Line, New Natham Road,
MADURAI - 625 014

प्रभु की सेवा में
स्वामी कमलात्मानन्द
अध्यक्ष